R.N.I. No. 2321/57

अगस्त 2019

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2019-21

अंक 7

तपोभूमि

मासिक

राष्ट्रीय एकता के प्रतीक

योगेश्वर श्रीकृष्ण

श्री गुरू विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा
में
गुरुपूर्णिमा का पर्व उत्साह सहित सम्पन्न

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी गुरुपूर्णिमा का पर्व वेदमन्दिर, मथुरा में विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुआ। दिनांक 14, 15, 16 त्रिदिवसीय कार्यक्रम में यजुर्वेद पारायण यज्ञ रखा गया। यज्ञ के मुख्य यजमान फरीदाबाद निवासी दम्पत्ति श्री कृष्णवीर जी शर्मा और उनकी पत्नि श्रीमती सरोज शर्मा रहीं। तीनों दिन यज्ञ के दोनों सत्रों में जिन यजमानों ने उत्साह सहित भाग लिया उनमें श्री जगपाल आर्य फेंचरी, संतोष आर्य कसेरा, भानुप्रताप मलिक मथुरा, हेमेन्द्र सेठ मथुरा, ओमप्रकाश उर्फ ओमी मथुरा, अध्यापक सत्यपाल मथुरा, श्री बृजकिशोर जी माधुरीकुण्ड-मथुरा, ओमप्रकाश जी आर्य एटा, सुखवीरसिंह आर्य नोएडा, श्री सत्यवीरसिंह मण्डी सचिव आगरा, कृष्णकुमार मलिक खुशीपुरा, योगेश यादव बरारी, अन्तिम दिन मुख्य यजमान की भूमिका श्री कृष्णवीर जी शर्मा के भांजे पंकज शर्मा ने निभाई। इस अवसर पर हाथरस, अलीगढ़, एटा, बुलन्दशहर, गाजियाबाद, भरतपुर, पलवल, होडल, सम्भल, बदायूं, मुरादाबाद, इटावा, मैनपुरी, फिरोजाबाद, कन्नौज, कानपुर, ग्वालियर, भिण्ड, मुरैना, झांसी, फतेहपुर, बांदा, सिरसागंज, नवादा (बिहार), रायपुर (छत्तीसगढ़), बलरामपुर, अलवर, रेवाड़ी, आगरा, नौएडा, मुरादनगर, मेरठ इत्यादि स्थानों से हजारों की संख्या में नर-नारियों ने भाग लिया और अपना सर्वात्मना सहयोग प्रदान किया। अन्तिम दिन यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति सबने मिलकर प्रदान की। इस सम्पूर्ण कार्यक्रम में बाजना निवासी श्री विनोद चौधरी का विशेष योगदान रहा।

यज्ञ के उपरान्त जैसाकि गुरुकुलों की परम्परा के अनुसार गुरुकुल में प्रविष्ट हुये ब्रह्मचारियों का प्रवेश उपनयन संस्कार के साथ किया जाता है उसी परम्परा में गुरुकुल वृन्दावन में प्रविष्ट होने वाले 40 छात्रों की प्रवेश दीक्षा का कार्यक्रम उपनयन संस्कार के साथ सम्पन्न किया गया। अपने राष्ट्र और समाज के लिए समर्पित इन ब्रह्मचारियों के अधिकांश माता-पिता इस अवसर पर उपस्थित थे। वैदिक संस्कृति के रक्षक बच्चों में उत्तम संस्कार प्रदान कर उत्तम मानव बनाने के लिए उन्होंने ही अपने बच्चों को हर्ष सहित आशीर्वाद प्रदान किया। प्रांगण में उपस्थित सभी आर्यजनों ने इस भव्य आयोजन का करतल ध्वनि से स्वागत किया। सभी बच्चों का विधिवत् उपनयन संस्कार होने के बाद वेदमन्दिर मथुरा के अनन्य सहयोगी श्री पूरनसिंह जी आर्य और भरतपुर निवासी श्री भानुप्रताप यादव के पुत्र प्रिय गुरुदत्त

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–65 | संवत्सर 2076 | अगस्त 2019 | अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2019

सृष्टि संवत्
1960853120

दयानन्दाब्दः 195

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा (उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा0 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4–5
युवावस्था का उपयोग	–पं0 माधवराव	6–7
स्वास्थ्य चर्चा		8–9
वाणी का शर कहां गया ?		10
शान्ति स्थापित करने का वैदिक उपाय	–पं0 धर्मदेव सिद्धान्तालंकार	11–12
गोमूत्र और गोमय से रोगनिवारण	–	13–16
गुरुकुल के नव–स्नातक ब्र. प्रदीप शास्त्री		17
गुरुकुल के नव–स्नातक ब्र. अभिषेक शास्त्री		18
गुरुकुल के नव–स्नातक ब्र. सुनील शास्त्री		19
गुरुकुल के नव–स्नातक ब्र. दिव्यानन्द शास्त्री		20
गुरुकुल के नव–स्नातक ब्र. रवि शास्त्री		21
प्रेम	–विश्वव्याप्त (प्रभा)	22–24
चार वर्णों के नाम	–दामोदर सातवलेकर	25–29
प्रतीक्षा	–रमेश शर्मा 'बन्धु'	30–33
बरगद की गवाही	–कु0 श्री विद्या	34

❀❀❀

वार्षिक शुल्क 150/– | पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

यज्ञोपवीत के तिहरे तीन तार

त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदाचन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा।। –अथर्व0 5। 28। 8

शब्दार्थः–

यज्ञोपवीत के (त्रयः सुपर्णाः) शोभन रूप से जीवन को पूर्ण करने में समर्थ तीन तार (त्रिवृताः) तिहरे बटे होकर (एकाक्षरम् अभिसंभूय) ओंकार की एकाक्षर–ग्रन्थि में समवेत होकर (यदा आयन्) जब आते हैं, तब (शक्राः) शक्तिशाली हो जाते हैं। वे (अमृतेन साकम्) अमर ओंकार को साथ लेकर (विश्वा दुरितानि) सब दुरितों को, दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (अन्तर्दधानाः) अन्तर्हित करते हुए (मृत्युम्) मृत्यु को (प्रत्यौहन्) प्रतिवहन करके दूर ले जाते हैं।

भावार्थः–

क्या तुम यज्ञोपवीत के तारों की महिमा जानते हो? यज्ञोपवीत को धारण करते हुए जिन दो मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है उनका भाव यह है कि–'यज्ञोपवीत परम पवित्र है, यह पहले–पहल प्रजापति का सहजात उत्पन्न हुआ था। यह आयुष्य को देनेवाला है, सबसे पूर्व विद्यमान हुआ। इस शुभ्र यज्ञोपवीत को तू धारण कर। हे यज्ञोपवीत धारण के इच्छुक! तू स्वयं यज्ञ का उपवीत है, इस सूत्रमय यज्ञोपवीत से मैं तुझे बाँधता हूँ।' सृष्टि के आदि काल में जो प्रजापति उत्पन्न हुआ यज्ञोपवीत या यज्ञ की भावना उसी के साथ पैदा हुई थी। उसी ने यज्ञोपवीत चलाया, तभी से आचार्य उपनयन संस्कार में बालक को यज्ञोपवीत दे रहा है। मनुष्य यज्ञमय हैं, इसी बात को स्मरण कराने के लिए यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। बालक जब छोटा होता है, तब घर में माता–पिता की अग्नि में यज्ञ करता है, गुरुकुल में प्रविष्ट होकर आचार्य की अग्नि में यज्ञ करता है। विवाह–संस्कार के साथ वह अपनी अग्नि स्थायी रखने लगता है, जिसे गार्हपत्य अग्नि कहते हैं। उसी अग्नि में से यज्ञार्थ आहवनीय अग्नि ली जाती है। गृहस्थ होकर वह पंचमहायज्ञ करने लगता है।

उपनषिद कहती है कि मनुष्य का जीवन यज्ञ है। आयु के प्रथम 24 वर्ष प्रातःसवन हैं, अगले 44 वर्ष माध्यन्दिन सवन हैं, अगले 48 वर्ष सायं–सवन हैं। इस बीच उसे कभी आधि–व्याधि सताने लगे, तो उसे ललकार कर कहे कि यह मेरा यज्ञ चल रहा है, मेरे यज्ञ को विघ्नित न करो। तब वह उस आधि–व्याधि से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार वह 116 वर्ष जीवित रहता है। महिदास ऐतरेय ने यह परीक्षण

किया था, और वह 116 वर्ष जीवित रहा था। शास्त्रकारों ने मनुष्य के लिए जिन यज्ञों का भी विधान किया है, उन सबका प्रतीक यज्ञोपवीत है।

यज्ञोपवीत में तीन तार होते हैं, जो तिहरे बटे होते हैं। इस प्रकार वस्तुतः 9 तार होते हैं। हमें भी अपने बाल्य, यौवन और जरा के तारों को ज्ञान-कर्म-उपासना में त्रिवेष्टित करना है, सत्त्व, रजस,तमस के समन्वय में त्रिवेष्टित करना है, यज्ञअध्ययन-दान में त्रिवेष्टित करना है, श्रवण मनन-निदिध्यासन में त्रिवेष्टित करना है। यज्ञोपवीत में जो ग्रन्थि लगी होती है, वह ओंकार की आकृति बनाती है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि हमें अपने सब यज्ञकार्य ओंकार को समर्पण करने की भावना से सम्पादित करने हैं। मन्त्र कह रहा है कि यज्ञोपवीत के जो त्रिवेष्टित तीन तार हैं, वे 'सुपर्ण' हैं, शोभनरूप से जीवन कोपूर्ण करनेवाले हैं, जब वे एकाक्षर 'ओम्' की ग्रन्थि में समन्वित होते हैं, तब वे बहुत शक्तिशाली हो जाते हैं और यज्ञोपवीतधारी को भी शक्ति से भरपूर कर देते हैं। वे ओंकार के साथ मिलकर यज्ञोपवीतधारी के सब दुरितों को अन्तर्हित करके मृत्यु को अर्थात् अकाल मृत्यु को दूर कर देते हैं, वह लगभग शतायु होता है और मृत्यु-भय उसे नहीं रहता।

प्रस्तुत मन्त्र जिस सूक्त से लिया गया है वह सूक्त कहता है कि यज्ञोपवीत के त्रिवृत् तीन तार हिरण्य, रजत और अयस् (लोहे) के प्रतीक हैं। अतः यज्ञोपवीत से यह प्रेरणा भी ग्रहण कर सकते हैं कि हम हिरण्य के समान तेजस्वी, रजत के समान सौम्य तथा लोहे के समान दृढ़ हों। वह सूक्त यह सूचना भी देता है कि ये तीन तार अन्न की समृद्धि, पुरुषों की समृद्धि तथा पशुओं की समृद्धि के भी द्योतक हैं। इनसे आदित्यों का, अग्नि का तथा इन्द्र का भी सम्बन्ध है। एक तार यह सूचित करता है कि आदित्य हमें वसु से सींचें, दूसरा तार यह बताता है कि एक चिनगारी से सुलग कर अग्नि जैसे वृद्धि प्राप्त कर लेती है, वैसे हम भी वृद्धि प्राप्त करें। तीसरा तार हमारे अन्दर यह भावना भरता है कि हम इन्द्र के समान वीर हों। ❁❁❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से विनम्र निवेदन है जिन्होंने वर्ष **2017 व 2018 का वार्षिक शुल्क** बार-बार के पत्र लेखन तथा फोन द्वारा सूचना देने के बाद भी अभी तक जमा नहीं कराया है। वे वर्ष **2019** के वार्षिक शुल्क के साथ अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। शुल्क जमा न होने की स्थिति में पत्रिका बन्द कर दी जायेगी। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। वे पाठकगण धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने समयानुसार वर्ष 2019 का शुल्क जमा किया है।

-व्यवस्थापक

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

युवावस्था का उपयोग

लेखकः पं० माधवराव

सातवाँ संग्रहणीय सद्गुण सत्यप्रियता है। जिस प्रकार ईश्वरनिष्ठा, विनय आदि गुणों का अभ्यास तरुणाई में करना चाहिए, उसी प्रकार सत्यप्रियता का भी अभ्यास इसी समय में करना परम आवश्यक है। इसकी सहायता से, और कृत्रिमता का त्याग करने से, सब सद्गुणों की वृद्धि होती है। अपने जीवन के सब सिद्धान्तों को सत्यता और स्वाभाविकता के आधार से ही निर्मित करना चाहिए।

जो मनुष्य बोलता कुछ है, विचारता कुछ और करता कुछ और ही है, वह आगे चलकर बड़ा नीच, विश्वासघाती और परनिन्दा में रत हो जायगा। वह समाज–कंटक बनकर समस्त संसार के तिरस्कार का पात्र हो जायगा। सत्य–पक्ष के ऊपर पहले चाहे विपत्ति भी आ जाय परन्तु अन्त में उसकी जीत हुए बिना नहीं रहती। सत्य का मार्ग अगम होने पर भी सुगम, सीधा और सरल होता है। सत्य के ही बल पर संसार स्थित है। इसके विपरीत झूंठेपन का मार्ग क्षणिक मोहकता के कारण पहले यद्यपि सरल मालूम होता हो परन्तु अन्त में दूध का दूध और पानी का पानी ही होता है। हरएक मनुष्य इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि झूंठ सदा अन्त तक नहीं छिपा सकता।तब फिर भंडा फूट जाने पर बड़ी विपन्न दशा आ पहुंचती है। इतना ही नहीं, झूंठेपन का मार्ग सभी तरह से नाशकारी है। एक झूंठ बात कहकर उसका निर्वाह करने के लिए दूसरी झूठ बात बनानी पड़ती हैं और दूसरी के लिए तीसरी। इसी प्रकार सदा झूंठी बात करने की ही आवश्यकता हो तो जाती है। अन्त में किसी न किसी बार निशाना चूक जाने पर मनुष्य ऐसा बेढब फंसता है कि फिर उस जाल से जन्म भर निकलना असम्भव हो जाता है। असत्यप्रिय मनुष्य अपने आचरण से सदा विचार हीनता, मन की दुर्बलता और कायरता प्रकट किया करता है। सत्यवक्ता में पूर्ण साहस होता है। उसे असत्य सरीखी तुच्छ चीजों के आश्रय में जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं मालूम होती। परन्तु सत्यभाषण के समय एक बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए। वह यह है कि मनुष्य को 'लट्ठमार सत्य' कभी नहीं बोलना चाहिए। सत्य बोलो अवश्य, परन्तु प्रिय शब्दों में। कहा ही है कि 'सत्य ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।''

आठवाँ गुण, जिसके बिना सब बना बनाया खेल बिगड़ जाता है, संयम अथवा इन्द्रियनिग्रह है। यह वह पहरेदार सिपाही है जिसकी गैरहाजिरी में अपने पास के बहुत से गुण चोरी, डाके और शरारत करने की तैयारी करने लगते हैं। पुराने जमाने की एक कथा है। किसी मनुष्य के पास जब बहुत से गुण हो गये और जब वह उन सबको देख भाल ठीक–ठीक नहीं कर सका, तब उसने अपने समय की सब समाचार–पत्र–पत्रिकाओं में एक विज्ञापन निकाला, जिसका आशय यह था कि अमुक समुक सदगुणों

का संग्रह ही मेरी पूंजी है और मैं अपने इन गुणों के कोष की रक्षा अच्छी तरह से नहीं कर सकता, इसलिए जो मनुष्य इस कोष की पहरेदारी की नौकरी करना चाहता हो वह मेरे पास दरखास्त भेजे, वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। विज्ञापन को सारे शिक्षित संसार ने पढ़ा। परन्तु उस नौकरी के लिए दरखाश्त देने की हिम्मत किसी को न हुई, क्योंकि शर्त बहुत कड़ी थी। बहुत दिनों के बाद दो आदमी नौकरी के लिए स्वयं पहुंचे। एक आया पूर्व से जिसका नाम 'संयम' था। दूसरे महाशय आये थे परिश्चम से। आपका नाम मिस्टर 'विलास' था। बहुत जाँच पड़ताल के बाद उस विज्ञापनदाता ने संयम को ईमानदार समझकर नौकरी दे दी। मिस्टर 'विलास' निराश और क्रुद्ध होकर चले गये। उसी समय से वे संयम पर बहुत नाराज हैं और उससे बदला लेने की चिन्ता में रहा करते हैं। जब कभी वह संयम नामक सिपाही गैरहाजिर रहता है, तभी मिस्टर 'विलास' उस गुणों के कोष को सत्यानाश करके बेचारे संयम पर बट्टा लगाना चाहते हैं। परन्तु संयम के रहते मिस्टर 'विलास' को स्वयं अपने ही विनाश का भय बना रहता है। इससे वे पास नहीं फटकते। प्यारे पाठको! इस पुराने जमाने की कथा का सारांश बिलकुल सच है। यह त्रिकाल सत्य है यदि आपके पास भी सदगुणों का कोई कोष हो (है अवश्य, हमारा तो यही विश्वास है) तो उसकी रक्षा के लिए आप संयम पहरेदार को ढूंढ़िए।

ऊपर युवावस्था के जो-जो कर्तव्य या उपयोग बतलाये गये हैं वे सब महत्वपूर्ण और लाभकारी हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक सदगुणों का अभ्यास बतलाया जा सकता है। परन्तु इस समय इतना ही काफी होगा। यदि हमारे नवयुवक चाहें कि उक्त कर्तव्य-कुसुमों की एक पुष्पमाला बना कर अपने हृदयस्थल में धारण कर लें, तो उनके जीवन की सार्थकता होकर शोभा भी हो सकती है। इस अद्‌भुत पुष्प-जयमाल की सुगन्ध से वे अपने साथ अपने कुटुम्ब और समाज को कृतकृत्य कर सकते हैं। परन्तु जब तक इस जयमाल के मध्य में एक गुलाब का फूल न हो, तब तक इसकी शोभा हजार उपाय करने पर भी फीकी ही रहती है। अतएव इस जयमाल की शोभा को पूर्ण करने के लिए हम जब तक उस बीच की खाली जगह को उद्योगरूपी गुलाब के फूल से न भर देंगे, तब तक उसमें पूर्णता न आवेगी। फूलों में जैसे गुलाब का स्थान ऊँचा है वैसे ही सब गुणों में उद्योग या प्रयत्न का भी दर्जा है। स्मरण रहे कि उद्योग रूप इस स्वर्गीय गुलाब के पौधे लगाने की सर्वोत्तम ऋतु तरुणाई ही है। यदि तरुणावस्था में इस स्वर्गीय पुष्प की प्राप्ति के लिए उचित प्रयत्न न किया जायगा तो जीवन-संग्राम में विजय की प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है। हमने अपना यह आन्तरिक विश्वास अनेक स्थानों में प्रकट किया है कि भविष्य भारत के निर्माता हमारे युवक विद्यार्थीगण ही हैं। यथार्थ में वे ही देश की भविष्य उन्नति के आधारस्तम्भ हैं। परन्तु जिस जिम्मेदारी के अर्थ में 'स्तम्भ' शब्द का उपयोग किया जाता है उस पर सदैव ध्यान जमा रहे, अर्थात् सदाचरण, शील, सुसंगति, सदभाव, विचारस्वातंत्र्य, ईश्वरनिष्ठा, विनय, स्वदेशप्रेम, मातृ-भूमि की सेवा, सत्यप्रियता, संयम, इन्द्रियनिग्रह आदि सदगुणों का अभ्यास, युवावस्था में अवश्य किया जावे। इन गुणों की सहायता से यश और लाभ होगा, विजय और सुख होगा, सच्चा स्वार्थ और सर्वश्रेष्ठ परोपकार सिद्ध होगा। इन सदगुणों से विभूषित प्रयत्नशील युवक ही आगे चलकर स्वामी विरजानन्द, महर्षि दयानन्द, पं0 गुरुदत्त, पं0 लेखराम, तिलक, मालवीय बनेंगे और न केवल अपने ही देश के वरन् सारे संसार के जीवित मनुष्यों से 'कर्मवीर', 'रत्न', 'पुरुषसिंह' आदि उपाधियाँ प्राप्त करके इन शब्दों की शोभा बढ़ायेंगे। ❀❀❀

गतांक से आगे–

स्वास्थ्य चर्चा

बिच्छू–दंश पर

1. फिटकरी सफेद 4 ग्रेन, गुलाबजल या ताजा पानी 10 ग्राम, दोनों को मिला लें। बिच्छू–दंशवाले रोगी को चित लिटा लें और उसकी आंखों में 4–4 बूंद दवा डाल दें। 2 मिनट में ही लाभ हो जाता है बिच्छु–काटे की रामबाण औषधि है।

2. लाहौरी नमक (सेंधा नमक) खूब बारीक कूट–पीस कपड़छन करके रख लें। बस, औषधि तैयार है। जिसे बिच्छू ने काटा है उसके दंश–स्थान पर यह नमक भर दो और यही नमक पानी में घोलकर जिस ओर बिच्छू ने काटा है उसके दूसरे भाग के कान, नाक और आंख में भी 2–3 बूंद टपका दो। रोगी रोता आएगा और हंसता हुआ जाएगा।

3. मोचरस को पानी में पीसकर टिकिया बना लें और दंश–स्थान पर चिपका दें। यह टिकिया विष को चूसकर ही छूटेगी।

4. रोगी को मूली खिलाओ और दंश–स्थान पर मूली का रस ही लगाओ।

5. जमालगोटे की गिरी को पानी में पीसकर दंश–स्थान पर लगाने से तुरन्त आराम होता है।

6. नीम की पत्तीवाली टहनी लेकर झाड़ने से भी बिच्छू का विष उतर जाता है।

7. आक के पत्तों की नस्य देने से छीकें आकर विष उतर जाएगा और रोता हुआ रोगी हँसता हुआ जाएगा।

8. तुलसी के पत्तों का रस दंश–स्थान पर लगाने से शीघ्र आराम आता है।

9. दंश–स्थान पर सत्यानाशी का रस लगाने से तुरन्त आराम आता है।

10. बीस से एक तक उलटी गिनती गिनने से भी बिच्छू–विष उतर जाता है।

11. बिच्छू या ततैया के काटने पर तारपीन का तेल लगाना गुणकारी है।

बिवाई फटने पर

1. राल 10 ग्राम, घी 10 ग्राम, मोम 3 ग्राम। पहले घी को गर्म करें, जब खूब गर्म हो जाए तब उसमें मोम मिला लें। जब दोनों मिल जाएँ तब राल भी मिला लें। इस मरहम को रात्रि में पैरों को धोकर बिवाइयों में भर दें। बिवाइयाँ ठीक होकर पैर सुन्दर हो जाएँगे।

2. मोम 6 ग्राम को 40 ग्राम तिल के तेल में पकाएँ। जब पकने लगे तब 10 ग्राम राल भी पीसकर डाल दें और थोड़ी देर पकाकर नीचे उतार लें।

इस मरहम को बिवाइयों में भरें। बहुत लाभदायक है।

बुखार

1. तुलसी के पत्ते 6, कालीमिर्च 4, पीपल 1, मिश्री 10 ग्राम। सबको जल के साथ पीसकर रोगी को पिलाएँ तो महीनों का ठहरा हुआ बुखार दूर हो जाता है।

2. अजवायन देसी 6 ग्राम, गिलोय 3 ग्राम।

3. लगे हुए पान में देशी कपूर 6 ग्रेन (तीन रत्ती) रखकर रोगी को खिलाओ और कपड़ा उड़ा दो। पसीना आकर ज्वर उतर जाएगा।

बुद्धिवर्धक

गिलोय, अपामार्ग पंचांग, बायविडंग, शंखाहूली पंचांग, बच, हरड छोटी, कूठ मीठा और शतावर समभाग लें। सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना लें। सबके वजन के बराबर मिश्री भी कूटकर मिला लें। प्रतिदिन 6 ग्राम चूर्ण घी अथवा शहद में मिलाकर चाटें। स्मरण-शक्ति बढ़ाने के लिए अद्‌भुत योग है।

ब्लड-प्रैशर (रक्तचाप)

1. नीबू पानी में निचोड़कर पिएँ। फौरन लाभ होगा।

2. प्रातःसायं शुद्ध वायु का सेवन और ब्रह्मचर्य से रहना-इस रोग की प्रत्येक अवस्था में लाभदायक है।

भगन्दर

1. करीर और एरण्ड के पत्तों को पीसकर हल्का गर्म बांधने से भगन्दर घुल जाता है।

नोट- करीर में पत्ते नहीं होते, उसकी ऊपर की कच्ची कोंपले लें।

2. उत्तम राल को बारीक पीसकर भगन्दर पर लगाने से भगन्दर नष्ट होता है।

भाँग का नशा उतारना

1. मीठा ताजा दही निरन्तर खिलाते रहें।

2. बिना कुछ लिखा हुआ ग्लेज सफेद कागज लेकर उसे पानी में रगड़ लें। कागज को फेंककर पानी पिला दें। पानी पेट में पहुंचने की देर है कि बेहोशी होश में बदलने लग जाएगी।

भीतरी चोट

फिटकरी का चूर्ण 3 ग्राम और गोदुग्ध आधा किलो, दोनों को मिलाकर पीने से भीतरी चोट दूर होगी।

मक्खी-नाशक

कमरा बन्द करके 3-4 दिन तक कमरे में नीला थोथे की धूनी दें। मक्खियाँ भाग जाएँगी।

मच्छर भगाने के लिए

सरसों के तेल में समभाग अजवायन पीसकर उसमें गत्ते के टुकड़ों को तर करो और कमरे में चारों कोनों में लटका दो, सारे मच्छर भाग जाएँगे।

-(शेष अगले अंक में)

वाणी का शर कहां गया ?

यह क्या हुआ तुम्हारा त्यागी विद्रोही स्वर कहां गया ?
रोटी तो मिल गई मगर वह बांका तेवर कहां गया ?
जिसकी आंच गीत बनती थी कहां गई वह आग पुरानी ?
कण्ठ तुम्हारा है पर इसमें गूँज रही आवाज बिरानी !

मोहक वसन और सोने को फूलों वाली सेज मिल गई,
तन ढक गया मगर मन के प्रश्नों का उत्तर कहां गया ?
जो उजियाले के विरुद्ध हैं, उनसे कोई बात क्या कहे,
जब तुम अन्धकार के स्वागत में अभिनन्दन-पत्र पढ़ रहे,

सिंहासन के खास बगल में आसन एक मिल गया ऊंचा,
चन्दन भी मिल गया भाल को लेकिन आदर कहां गया ?
वह क्या हुआ दुखी कुटिया को तुमने जो भी वचन दिया था,
तुमने उस उदास दरवाजे से कोई वायदा किया था,

पयघट खुद ढल गया तुम्हारे अधरों पर, माना यह सच है,
मिलने को मिल गई वारुणी, वाणी का शर कहां गया ?

❁

महापुरुषों की जयन्ती

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 अगस्त
गोस्वामी तुलसीदास	7 अगस्त
अरविन्द घोष	15 अगस्त
राजगुरु	24 अगस्त
योगीराज कृष्णचन्द्र	24 अगस्त

9 अगस्त	भारत छोड़ो आन्दोलन दिवस (1942)
15 अगस्त	स्वतन्त्रता दिवस
15 अगस्त	रक्षाबन्धन
15 अगस्त	हैदराबाद सत्याग्रह दिवस

महापुरुषों की पुण्यतिथि

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक	1 अगस्त
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी	6 अगस्त
रविन्द्रनाथ टैगोर	8 अगस्त
खुदीराम बोस	11 अगस्त
मैडम मिकाजी कामा	13 अगस्त
वीर गुलाबसिंह	14 अगस्त
मदनलाल ढींगरा	17 अगस्त
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	18 अगस्त

शान्ति स्थापित करने का वैदिक उपाय

लेखक: पं0 धर्मदेव सिद्धान्तलंकार

संसार में आजकल जिधर भी दृष्टिपात करें सर्वत्र अशान्ति का साम्राज्य दिखाई देता है। कहीं एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र के बीच में विद्वेषाग्नि भड़क रही है, कहीं धनियों का सच बेचारे गरीब श्रमियों का मुंह में निगल जाने को तैयार है, कहीं एक ही देश की रहने वाली भिन्न-भिन्न जातियां स्वार्थ सिद्धि में तत्पर होकर एक दूसरे का गला घोंटने को तैयार हो रही हैं, कहीं शक्ति मदोन्मत्त शासकवर्ग आश्रित दीन प्रजा का रक्षक होने के स्थान में भक्षक बन रहा है और न्याय नियम तथा व्यवस्था के पवित्र नामों को कलंकित करते हुए उसे पैरों तले रोंद रहा है, कहीं भाई-भाई परस्पर शत्रु बने हुए हैं और एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। इन पारस्परिक झगड़ों के कारण न तो परिवारों में शान्ति देवी का वास है न समाजों में और न सम्पूर्ण जगत में। इसी शोचनीय व्यवस्था को देखकर व्याकुल अनेक विचारक आवेश में कह उठते हैं कि जगत् केवल दुःखरूप है, यहां शान्ति का नामो निशान नहीं, जगत में रहते हुए सुख और शान्ति की आशा करना बालू से तेल अथवा मृगतृष्णा से जल निकालने की आशा के समान है। पर हमें विचार करना है कि क्या ऐसे सज्जनों का कथन युक्तिसंगत और वेदानुकूल है; जगत् में आजकल अशान्ति का ही साम्राज्य दृष्टिगोचर हो रहा है। इसमें किसी को ननु न च करने का साहस नहीं हो सकता पर इतने ही से यह सामान्य स्थापना कर देना कि जगत् में शान्ति का वास ही कहीं नहीं है। यह केवल कविकल्पनामात्र है बड़ी सख्त भूल है। वेद इस जगद्दुःखबाद का बिल्कुल भी समर्थक नहीं है ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। वैदिक दृष्टि यही है कि आनन्दमय सुख के स्रोत दयामय की रचना होने के कारण यह जगत् भी सुख आनन्द और शान्ति को प्राप्त करने का एक उत्कृष्ट साधन है और जब इसे प्रेमी भगवान द्वारा दिया हुआ उपहार समझकर हम जगत् के सब पदार्थों की ओर दृष्टि डालते हैं तो निःसन्देह वह हमें उत्कृष्ट सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति कराने का सामर्थ्य रखता है। संस्कृत में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है-"नाये स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति" अर्थात् यदि एक अन्धा खम्भे को न देख सकने के कारण ठोकर खाकर जखमी हो जाता है तो इसमें उस खम्भे का कोई कसूर नहीं है। इसी तरह हम यह कह सकते हैं कि अगर शान्ति प्राप्त करने के उपायों को न जानते हुए हम लोग अज्ञानवश अशान्ति के दुःखदायक साम्राज्य का विस्तार करने में तत्पर हो रहे हैं तो उसके लिये मंगलमय भगवान की अद्भुत रचना को कोसना सरासर अन्याय और अनुचित है। यदि इस प्रकार के सज्जन निम्नलिखित वेदमन्त्रों के महत्वपूर्ण भाव को अपने दिल के अन्दर सम्पूर्णतया अंकित करके व्यवहार करना शुरू कर देंगे तब उन्हें अपनी भूल का स्पष्ट अनुभव होने लगेगा, तब उनके साथ किसी को इस विषय में वाद विवाद करने की जरूरत ही न रहेगी। मैंने ऊपर जिन मंत्रों की ओर इशारा किया है वे निम्नलिखित हैं-

इदं या परमेष्ठिनी, वाग्देवी ब्रह्मसंशिता।
यथैव ससृजे घोरं तथैव शान्तिरस्तु नः॥ 3॥
इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः॥ 4॥
इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव संसृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः॥ 5॥ –अथर्व0 19। 9

इन मंत्रों में वाणी, मन और इन्द्रियों का नाम लेकर कहा गया है, कि इन्हीं के दुरुपयोग के कारण संसार में घोर अशान्ति मच जाती है। ज्यों–ज्यों हम अज्ञानवश इनको अनुचित प्रयोग में लाते हैं त्यों–त्यों हम अशान्ति के शासन के फैलाव में सहायक बनते हैं। किन्तु इनको ठीक काम में लाकर शान्ति का साम्राज्य स्थापित करना भी हमारे अपने ही हाथों में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वाणी, मन, इन्द्रिय सब को 'परमेष्ठी' और 'ब्रह्मसंशित' बनाने का वेद में विधान किया गया है। परमेष्ठी बनाने का अभिप्राय यह है कि परम अर्थात् उत्कृष्ट वस्तु के चिन्तन में मन सदा अवस्थित रहे। वाणी द्वारा उसी उच्च विषय का प्रतिपादन किया जाए और इन्द्रियों को उसी श्रेष्ठ विषय के ग्रहण के लिये प्रवृत्त किया जाए। इसी तरह वाणी, मन और इन्द्रिय तीनों को 'ब्रह्मसंशित' अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न और उन्नत करने पर ही शान्ति की स्थापना परिवार, समाज और जगत् में की जा सकती है अन्यथा नहीं। सारी खराबी मूल अज्ञानवश वाणी इत्यादि का अनुचित स्थान में प्रयोग ही है यदि उनके बुरे विषयों के चिन्तन, प्रतिपादन और ग्रहण से सर्वथा निवृत्त करके ज्ञानपूर्वक परब्रह्म या अन्य उत्कृष्ट विषयों के विचार में तत्पर किया जाए तो बहुत शीघ्र शांति का शासन संसार में स्थापित हो सकता है यदि वेद के पवित्र शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति–

" तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।"
"मधुमतीं वाचमुदेषम्।"
"भद्रं श्लोकं श्रूयासम्।"
"भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजवाः।"

इत्यादि के अनुसार अपने मन वाणी आदि की पवित्रता की ओर सदा दृष्टि रखे तो आध्यात्मिक, आधिभौतिक (सामाजिक) और आधिदैविक शान्ति की स्थापना में कुछ भी देर न लगे।

ओम् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः॥

तन से सेवा कीजिये, मन से भलो विचार।
धन से या संसार में, करिये पर उपकार॥

गोमूत्र और गोमय से रोगनिवारण

गाय के मूत्र को गोमूत्र कहते हैं। वैद्य लोग इसका औषधों में बहुत उपयोग करते हैं। यह सौम्य और रेचक है। कब्ज हो गया हो, पेट फूल गया हो, डकारें आती हों, मुंह मिचलाता हो, तो तीन तोला स्वच्छ और ताजा गोमूत्र छानकर आधा माशा नमक मिलाकर पी जाना चाहिये। थोड़ी ही देर में शौच होकर पेट उतर जाता है और आराम मालूम होता है। छोटे बच्चों का पेट फूलने पर उन्हें गोमूत्र पिलाया जाता है। उम्र के अनुसार साधारणतः एक वर्ष के बच्चे को एक चम्मच गोमूत्र नमक मिलाकर पिला देना चाहिए। तुरन्त पेट उतर जाता है। पेट के कृमियों को मिटाने के लिये तो गोमूत्र से बढ़कर कोई दूसरी औषधि ही नहीं है। दो तोला गोमूत्र चने के बराबर डीकामाली के साथ मिलाकर प्रातःकाल बच्चे को पिलाया जाय, तो एक सप्ताह में ही कृमि नष्ट हो जाते हैं। बच्चों के डब्बे रोग पर भी कुलधी के काढ़े के साथ गोमूत्र दिया जाता है। बच्चे की दो मुट्ठियों में जितनी समावे, उतनी कुलथी कूटकर और उसमें बच्चे की हथेली के बराबर आक का पत्ता छोड़कर आध सेर पानी में पकाना चाहिये। जब पानी एक छटांक रह जाय, तब उसे छानकर और उसमें उतना ही गोमूत्र मिलाकर पिलाना चाहिये। तीन दिन में ही शौच-पेशाब साफ होकर पेट उतरने लगता है और सात दिन में डब्बा रोग अच्छा हो जाता है। (इस रोग में बच्चे का शरीर फूल जाता है, पेट बढ़ जाता है और नाभि ऊपर आ जाती है।)

पेट की हर-एक व्याधि पर गोमूत्र रामबाण है। यकृत या प्लीहा बढ़ गयी हो, तो पांच तोला गोमूत्र नमक मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से थोड़े ही दिनों में आराम मालूम होता है। यकृत् या प्लीहा पर गोमूत्र से सेंक भी किया जाता है। उसकी विधि इस प्रकार है-एक अच्छी ईंट आग में गरम कर ली जाय। फिर उस पर गोमूत्र छोड़कर गोमूत्र में भिगोये हुए कपड़े में उसे लपेट लिया जाय और उससे नरम-नरम सेंका जाय। इससे यकृत् या प्लीहा घट जाती है। शरीर खुजलाता हो तो कड़वा जीरा गोमूत्र में पीसकर उसका लेप किया जाय और नीम के पत्ते छोड़कर उबाले हुए पानी से नहाया जाय। खुजलाहट बंद हो जायगी। गोमूत्र में बाबची को पीसकर रात में कोढ़ के सफेद दागों पर लेप करने और सुबह गोमूत्र से ही धो डालने से कुछ दिनों में दाग मिट जाते हैं। पेट के फूलने पर भी गोमूत्र का सेंक लाभकारी होता है।

यकृत् और प्लीहा बढ़ने से उदररोग हो गया हो तो पुनर्नवा के काढ़े में आधा गोमूत्र मिलाकर पिलाया जाय, इससे उदर रोग अच्छा हो जायगा। इस सम्बन्ध में अक्कलकोट के डाक्टर चाटी अपना अनुभव इस प्रकार बतलाते हैं-'अपनी चालीस वर्ष की नौकरी में मैंने कितने ही जलोदर के रोगियों का इलाज किया। उन्हें अंग्रेजी दवाएँ पिलायीं और पेट चीरकर दो, तीन, चार बार भी पेट का पानी निकाल दिया; परन्तु उनमें से अधिकांश रोगियों की मृत्यु हो गयी। मैंने सुना और आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पढ़ा भी था कि इस रोग पर गोमूत्र का उपयोग बहुत ही लाभकारी होता है, परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता था।

एक बार एक साधु महात्मा ने गोमूत्र के गुणों का वर्णन करके कहा कि इसका जलोदर पर बहुत अच्छा उपयोग होता है। तदनुसार चार रोगियों पर मैंने गोमूत्र का प्रयोग कर देखा। उनमें से तीन चंगे हो गये। जो चौथा मर गया, वह मुमुर्षु अवस्था में ही मेरे पास आया था। जो अच्छे हो गये, उनमें से एक का ब्योरा इस प्रकार है–सन् 1910 में जब मैं अकलकोट राज्य में 'चीफ मेडिकल अफसर' था, तब मुझे जुन्नर गांव में जरूरी काम से बुलाया गया। वहां अप्पण्णा नामक एक तीस वर्ष का बढ़ई जलोदर से आसन्नमरण हो रहा था, उसी का इलाज करना था। रोगी का सब शरीर फूल गया था। न वह कुछ निगल सकता था, न हिल सकता था, और बड़े कष्ट से सांस लेता था। उसके जीने की कोई आशा नहीं बच रही थी। उसे इंजेक्शन देकर शक्तिवर्धक औषधि खिलायी और पेट चीरकर 16 पौंड पानी निकाल दिया, जिससे वह श्वासोच्छ्वास ठीक तरह से करने लगा। पंद्रह दिन बाद फिर आपरेशन कर 14 पौंड पानी उसके पेट से निकाला। अब वह अच्छा हो गया और उसके पेट में फिर पानी जमा नहीं हुआ। पहले दिन से ही उसे मैं एक नीरोग और बलिष्ठ गाय का मूत्र शहद के साथ दिया करता और एक पौंड गोदुग्ध पिलाया करता था। पंद्रह दिन बाद दो पौंड दूध देने लगा। इस इलाज से एक ही महीने में वह चंगा हो गया। मैंने इलाज बंद कर दिया। यद्यपि अब गोमूत्र सेवन के लिये उससे मैंने नहीं कहा था, तथापि वह बराबर गोमूत्र पिया करता था। उसका विश्वास हो गया था कि गोमूत्र से ही मेरे प्राण बचे हैं, इस कारण गोमूत्र सेवन से वह विरत नहीं हुआ और धीरे–धीरे हट्टा–कट्टा हो गया।

गोमय–महात्म्य

अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां वने वने।
तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्।।
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च नुद गोमय सर्वदा।

इस मन्त्र से सिर से पैर तक गोबर लगाकर स्नान करने की श्रावणी कर्म से विधि है। पंचगव्य (दही, दूध, घी, गोमूत्र और गोमय) प्राशन भी श्रावणी में किया जाता है। आधुनिक शिक्षित लोग इस विधि को घृणित और हेय समझते हैं; परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से पंचगव्य का कितना महत्व है, इसका उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया है। इस सम्बन्ध में डॉ0 रविप्रताप महाशय ने 'विशाल भारत' में एक लेख लिखा था, उसमें आप लिखते हैं–भारत में अनादिकाल से गोबर का मानवशरीर के लिये ओषधि की तरह उपयोग किया जा रहा है। परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में यह जानकर इस दिव्यौषधि का हमने त्याग कर दिया कि यह घृणित, गंदी, आरोग्यविघातक और दुर्गन्धिमय वस्तु है। यहाँ तक कि म्युनिसिपलिटियों के अधिकारी लोगों को हुक्म देने लगे हैं कि जमीन गोबर के बदले चूने से लीपा करो। आश्चर्य की बात है कि सहज सुलभ और निसर्गदत्त गोबर जैसी कृमिनाशक वस्तु को त्यागकर मँहगे, कृत्रिम और विदेशी जन्तुनाशक द्रव्यों का हम संग्रह कर रहे हैं।

हिन्दू धर्म के प्रायः सभी धार्मिक कार्यों में गोबर का उपयोग किया जाता है। (गोमयेन

प्रदक्षिणमुपलिप्य) इसका कारण भी यही है कि गोबर में रोग के कीटाणुओं का नाश करने का गुण विद्यमान है। प्राचीन ऋषि–महर्षि अपनी पर्णकुटियाँ गोबर से लीपकर स्वच्छ रखते थे। वे वस्तु की व्यावहारिक उपयोगिता जानकर उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया करते थे, जिससे यह समाज में रूढ़ हो जाय।

इटली वालों की खोज

इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो0 जी0 ई0 बीगेंडने गोबर के अनेक प्रयोग कर सिद्ध किया है कि ताजे गोबर से तपेदिक और मलेरिया के जन्तु तुरन्त मर जाते हैं। प्रोफेसर महाशय का अनुभव है कि प्राथमिक अवस्था के जन्तु तो गोबर की गन्ध से ही मर जाते हैं। गोबर के इस अलौकिक गुण के कारण इटली के अधिकांश सेनिटोरियमों में गोबर का ही उपयोग करते हैं। इटली में अब भी हैजा या अतिसार के रोगी को ताजे पानी में ताजा गोबर घोलकर पिलाते हैं और जिस तालाब के पानी में हैजे के जन्तु उत्पन्न हो गये हों, उसमें गोबर डालते हैं। गोबर से फोड़ा–फुंसी, घाव, दंश, चक्कर, लचक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। डॉ0 मैकफर्सन ने दो वर्ष तक गोबर का संशोधन कर उसका इतिवृत्त 'न्यूयार्क टाइम्स' में छपाया है। उसमें अनेक सिद्धान्त स्थिर कर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि गोबर से बढ़कर जीवाणुनाशक कोई दूसरा उपयुक्त द्रव्य नहीं है। उनका कहना है कि गोबर उसी गाय का होना चाहिये, जिसका आहार उत्तम हो और जो नीरोग हो। 'अग्रमग्रं चरन्तीनाम्' इस मन्त्र का भी यही अभिप्राय है।

गाय आरोग्य देवता है

सतपुड़े गोंड, भील आदि गोबर का सब कामों में उपयोग करते हैं। अपरमार, चक्कर, मस्तकविकार, मूर्छा आदि रोगों पर वे गाय के दूध या तिल के तेल में गोबर घोलकर पिलाते और इसी का लेप करते हैं। तेल में गोबर मिलाकर मालिश करने से मज्जातन्तु नीरोग हो जाते हैं। वैद्यलोग क्षयरोगियों को गायों के बाड़े में सुलाने को कहते हैं। क्योंकि गोमूत्र और गोबर की गन्ध से क्षयरोगी के शरीर के क्षयजन्तु मर जाते हैं। क्षयरोगी के पलंग को प्रतिदिन गोबर और गोमूत्र के जल से धो डालना भी लाभदायक होता है। हिन्दू लोग गोबर और गोमूत्र से प्रातःकाल घर के द्वार लीपते हैं। इसका कारण यही है कि दोनों द्रव्य रोगकीट–नाशक हैं। सन् 1934 में मद्रासप्रान्त में हैजे का प्रकोप हुआ। उस समय जो गोबर के गारों में काम करते थे, उन पर हैजे का कोई परिणाम नहीं हुआ। इस अनुभव के अनुसार वहाँ अब वर्षाकाल में सब कामों में गोबर का ही उपयोग किया जाता है। वहाँ के प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि आग से जल जाने या चोट से घाव होने पर गोबर के ले से अच्छा हो जाता है। खुजली, चकत्ते, ईसब आदि रोग तो गोमूत्र और गोबर के प्रयोग से बात–की–बात में अच्छे हो जाते हैं।

सार्वजनिक विषूचिका–प्रतिबन्ध

श्रावणी कर्म के पंचगव्य–प्राशन की विधि में भी यही उद्देश्य है। आषाढ़–सावन में नया पानी

आ जाता है। इससे हैजे की सम्भावना होती है। उसी के प्रतिबन्ध के लिये पंचगव्य प्राशन का प्रारम्भिक उपचार है। खाद्याखाद्य, पेयापेय, स्पृश्यास्पृश्य आदि का विचार न करनेवाले लोगों को ही हैजा हो जाने की अधिक सम्भावना रहती है। इसीलिये धार्मिक प्रक्रियाओं और शुद्धिसंस्कार में पंचगव्य-प्रायश्चित्त का विशेष महत्व है।

मद्रास के सुप्रसिद्ध डाक्टर किंग कहते हैं-यह अब प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि गाय के गोबर में हैजे के जन्तुओं का संहार करने की विचित्र शक्ति है। गाय के गोबर का शास्त्रीय रीति से पृथक्करण कर, उसका सत्व निकालकर उसे जहाँ-जहाँ पानी में डालकर देखा गया, वहाँ की घनी बस्ती में भी कहीं हैजा नहीं हुआ। डाक्टरों ने अब सिद्ध कर दिया है कि रोगजन्तु-नाश के लिये गोमय का बहुत ही महत्वपूर्ण उपयोग है। ❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान हेतु- 'श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

गुरुकुल के नव–स्नातक ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री

गुरुकुल विश्व विद्यालय कभी विश्व में विख्यात था पर काल के चक्र ने उसका अस्तित्व ही संकट में डाल दिया। सन् 2011 में प्रतिनिधि सभा ने यह गुरुकुल हमें समर्पित किया। ऐसी विषम परिस्थिति में कोई ब्रह्मचारी गुरुकुल में आये बड़ा कठिन था। जहाँ खण्डहर सांप, बिच्छुओं का निवास हो। सुविधायें शून्य हों ऐसे में कौन आये अध्ययन के लिए। उस समय प्रभु प्रेरणा से जिन ब्रह्मचारियों ने इस तप की अग्नि में अपने को समर्पित किया उनमें प्रिय ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री प्रमुख थे अन्य भी ब्रह्मचारी आये कालान्तर में कठिन तपस्या देख सभी भागते रहे। लेकिन ब्र. प्रदीप शास्त्री ने अनेकानेक विपरीतताओं में अपने पथ को न छोड़ा। ब्रह्मचारी प्रदीप पर संसार की क्षुद्रताओं का प्रभाव कम ही पड़ता है और ये बात को अपने ढंग से ही सोचते हैं। जीवन की यथार्थ सोच आजकल के युवकों में प्रायः लुप्त हो गई है। ब्रह्मचारी जी में प्रभु ने यह विशेषता दी है कि ये भावावेश में किसी प्रकार कदम नहीं उठाते। पूरी क्षमता से अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहते हैं। स्वभाव में साधुता परमात्मा ने कूट–कूट कर भर दी है। इसलिए इन्हें अजात शत्रु कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनके छात्र जीवन में सम्भवतः कोई इनका विरोधी नहीं रहा। सदा ही अपने ध्येय के प्रति समर्पित रहना इनकी विशेषता रही है। स्थिर चित्त ऐसे छात्र का रहता है इनके इस स्वभाव का ही परिणाम था कि कठिन श्रम करते हुए अन्ततः अष्टाध्यायी महाभाष्य जैसा कठिन ग्रन्थ पढ़कर शास्त्री की उपाधि से अलंकृत हुए। प्रदीप शास्त्री ग्राम वर्धा जनपद विदिशा मध्यप्रदेश के निवासी हैं। आपके पिता श्री धीरजसिंह व माता श्रीमती सावित्रीबाई हैं। आपका परिवार एक मध्यम वर्गीय कृषक परिवार है। महर्षि दयानन्द की कृपा इस परिवार पर हुई और ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री ऋषि विचारधारा के भक्त बन गये। प्रदीप शास्त्री में सुशीलता, निश्छलता, कर्तव्यनिष्ठा, ऋषि भक्ति आर्यसमाज के प्रति उत्साह आदि गुण सौभाग्य से विद्यमान हैं। गुरुकुल वृन्दावन के वर्तमान स्नातकों में अग्रणी हैं। छात्र जीवन में भी एक आदर्श छात्र के रूप में आपका जीवन प्रेरणाप्रद रहा। गुरुकुल को पुनर्स्थापित करने में आपकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है। आज उनको इस रूप में पाकर गुरुकुल परिवार गर्व का अनुभव करता है। समस्त आश्रम परिवार और तपोभूमि परिवार की ओर से शास्त्री जी को शुभकामनायें हैं। आशा है आप निरन्तर इस वैदिक पथ पर बढ़ते हुए आर्यसमाज का कार्य करते हुए अपने राष्ट्र की अप्रतिम विभूति बन जीवन को धन्य करेंगे।

जिन विद्वानों को हुआ, विदित वेद का मर्म।
सूझा उनको एक सा, सत्य सनातन धर्म।।

गुरुकुल के नव–स्नातक ब्रह्मचारी अभिषेक शास्त्री

गुरुकुल विश्व विद्यालय के पुनः संचालन होने पर उन विकट परिस्थितियों में आकर समर्पित होकर अध्ययन करने वाले नव स्नातकों में ब्रह्मचारी अभिषेक शास्त्री भी प्रमुख हैं। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के कैमथल नामक ग्राम में पिता श्री जगदीशसिंह व माता श्रीमती शशिदेवी आर्या के घर हुआ। कैमथल गाँव आर्यसमाज का प्रमुख केन्द्र है। आर्यवीर दल में इस ग्राम के अनेकानेक युवक निरन्तर संलग्न हैं। इसी वातावरण ने अभिषेक शास्त्री को गुरुकुल में विद्या अध्ययन के लिए प्रेरित किया। अनेकानेक विपरीत परिस्थितियों ने आपको अपने पथ से विचलित नहीं किया। निरन्तर तप करने का ही सुपरिणाम है कि आप गुरुकुल के नव स्नातकों की पावन श्रृंखला में अपना नाम अंकित कराने में सफल रहे। अपने अध्ययन काल में आपने सर्वात्मना समर्पित होकर गुरुकुल की सेवा की। गुरू विरजानन्द जी और ऋषिवर महर्षि दयानन्द जी के प्रति आपकी आस्था अटूट है। सौभाग्यवश महर्षि दयानन्द की कृपा से आपको गुरुकुल का सान्निध्य मिला और ऋषि विद्याओं के लिए आपके जीवन का द्वार खुला यह परम सौभाग्यशाली लोगों को मिलता है। सांसारिक उन्नति सम्बन्धी विद्यायें केवल मरने तक ही काम आती है लेकिन वैदिक आलोक में प्राप्त विद्या इहलोक और परलोक दोनों को बना देती है। उन विद्याओं में प्रवेश का सौभाग्य शास्त्री जी ने अपने पुण्य पुरुषार्थ से प्राप्त किया है। वे लोग धन्य हैं जिन्हें ईश्वर कृपा से वैदिक पथ पर चलने का सौभाग्य प्राप्त होता है वे और अधिक धन्य हैं जो इस मार्ग पर निरन्तर सांसारिक आकर्षणों से विमुख हो आगे चलते रहते हैं और अपने अन्तिम ध्येय सत्य को प्राप्त करके ही विश्राम लेते हैं। सांसारिक आकर्षणों के प्रबल संझावत में अनेक सुदृढ़ व्यक्तियों के पैर उखड़ जाते हैं और वे वैदिक पथ से विमुख हो जाते हैं। कालान्तर में जब भोग की भूख चुक जाती है सर्वस्व समाप्त हो जाता है। तब वे हाथ मलते रह जाते हैं फिर उनके जीवन में शून्यता ही शून्यता दृष्टिगोचर होती है। इन परिस्थितियों में हम ब्रह्मचारी से यही आशा करते हैं यहाँसे स्नातक होने के बाद भी उनका यह अभियान निरन्तर चलता रहेगा। पढ़ने और पढ़ाने का पवित्र अभियान वे रुकने नहीं देंगे। उनके स्नातक होने पर सम्पूर्ण गुरुकुल परिवार और तपोभूमि परिवार हार्दिक शुभ कामनायें देता है और साथ ही आशान्वित है। आप अपनी तपस्या से आर्यसमाजरुपी मानव निर्माण आन्दोलन की गति प्रदान कर संसार में शान्ति का स्थापना का मार्ग प्रशंसा अपने मानव जीवन को कृत–कृत्य करेंगे। आगे आने वाली पीढ़ी के लिए एक उच्च आदर्श प्रस्तुत करेंगे। ❁

गुरुकुल के नव–स्नातक ब्रह्मचारी सुनील शास्त्री

ब्र. सुनील का जन्म मध्यप्रदेश के विदिशा जनपद के वर्धा ग्राम में पिता श्री विनयसिंह एवं माता श्रीमती मिन्दाबाई जी के घर में यह परिवार मध्यम वर्गीय कठोर श्रम से ही इस परिवार ने बच्चों को पढ़ाया। महर्षि दयानन्द की अपार कृपा इस परिवार भी है। ब्रह्मचारी सुनील शास्त्री निरन्तर संघर्षशील छात्र रहे। इन्होंने अष्टाध्यायी महाभाष्यादि का अध्ययन करते हुए शास्त्री आचार्य की उपाधियाँ प्राप्त की। अपने अध्ययन काल में सर्वथा संस्था की प्रत्येक व्यवस्था के लिए समर्पित रहे। आपकी समाज व राष्ट्र के लिए लग्न व निष्ठा सराहनीय रहीं। हमें पूर्ण विश्वास है स्नातक दीक्षा के बाद भी ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के प्रति अनन्य निष्ठा रखते हुए आर्यसमाज का सुयोग्य सैनिक बनकर काम करेंगे। अध्ययनरत रहते हुए जो निष्कपटता, निश्छलता, सिद्धान्तप्रियता, देश व समाज के प्रति समर्पित भावना रही है वही इनके उज्जवल भविष्य का प्रतीक है। समाज में काम करने के लिए योग्यता के साथ व्यवस्था की अत्यधिक सुक्ष्मताओं का ज्ञान होना तथा सामाजिक व्यवहार में निपुण होना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचारी सुनील में यह त्रिवेणी संगम प्रभु प्रदत्त है। वर्षों आश्रम के जीवन में रहकर कठोर श्रम और संयम का पालन कर ऋषि विद्याओं के क्षेत्र में प्रविष्ट होकर ब्र. सुनील शास्त्री ने एक आदर्श स्थापित किया है। गुरुकुल परिवार एवं समस्त तपोभूमि परिवार उनकी इस उपलब्धि पर गर्व करता है। साथ ही शुभकामनाओं के साथ आशा करता है वे अपने चरण इस वैदिक पथ पर निरन्तर बढ़ाते हुए आर्यसमाज के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान देकर ऋषिवर देव दयानन्द का स्वप्न साकार करेंगे। प्रतिपल गुरुवर विरजानन्द के तप–त्याग और महर्षि दयानन्द के बलिदान स्मरण रखेंगे। जीवन में अनेकानेक उतार–चढ़ाव आते हैं पर वीरपुरुष वही होते हैं जो अपने ध्येय से तिल मात्र भी विचलित हुए बिना आगे बढ़ते रहते हैं। सच्चाई और समर्पण का पथ हमारे जीवन की प्रत्येक अवस्था को आत्मकल्याण के रूप में परिवर्तित कर देता है। ईश्वर पर विश्वास रख आगे बढ़ते रहो जो सांसारिक लोभ हमें ईश्वर से पृथक करें उनसे हर परिस्थिति में बचते रहो। विरोध हर प्रकार के जीवन में आते हैं उन्हें शान्ति और निश्चलता से सहन करो। उन्हें प्रभु की व्यवस्था में समर्पित कर दो। वह स्वयं समाधान कर देगा। इन सब बातों पर ध्यान देकर आशा है हमारे नवस्नातक सुनील शास्त्री सारे समाज की आशाओं का पूरा कर मानव जीवन को सार्थक करेंगे। ❁

जो विद्या–बल से बने, सज्जन सभ्य सुबोध।
उनके शिष्टाचार से, बढ़ता नहीं विरोध।।

गुरुकुल के नव–स्नातक ब्रह्मचारी दिव्यानन्द शास्त्री

ब्र. दिव्यानन्द जी ग्राम भलुआ जनपद शेखपुरा बिहार के मूल निवासी आपके पिता श्री मधुसूदन व माता श्री विमलादेवी आपका परिवार मध्यम वर्गीय कृषक परिवार है। श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर मथुरा में आप बाल्यकाल में ही आ गये। महर्षि दयानन्द की विचारधारा का प्रभाव आपके परिवार पर भी पड़ा और इनके पिताश्री ने सभी बच्चों को गुरुकुलीय शिक्षा देने का संकल्प लिया। उनके संकल्प का परिणाम सभी बच्चे गुरुकुल में दीक्षित होकर योग्यता कर रहे हैं। ब्रह्मचारी सदैव शान्त रहने वाले मौनव्रती रहे हैं। गुरुकुल ने जिसका भी उत्तरदायित्व सौंपा गया उसको निष्ठा व लग्न से यथावत निभाया। संकोची स्वभाव होने के कारण अपनी अभिव्यक्ति की मर्यादा बहुत सीमित रखते हैं। जिस विषय को पढ़ते हैं बच्ची योग्यता से पढ़े हैं। आपकी स्मरणशक्ति भी प्रभु कृपा से अति अत्युत्तम है। संसार के व्यवहार में सीमित रुचि रखते विद्या प्रेमी होने के कारण विद्या की हर विधा में आपकी रुचि है। आध्यात्म प्रेम आपको जन्मजात मिला है। सरल स्वभाव, ईष्यद्विष रहित जीवन लक्ष्य के प्रेरित सर्वात्मना समर्पण ही आपके सम्बल रहे अष्टाध्यायी–महाभाष्य करते हुए आपने शास्त्री की उपाधि प्राप्त की व अन्य विषयों में योग्यता प्राप्त की। ब्रह्मचारी दिव्यानन्द शास्त्री पर भी ईश्वर की अमित कृपा है यह स्वभाव से ही आर्यत्व की मर्यादा के पोषक हैं। आजकल के नवयुवकों जैसे लोलुपता इसको स्पर्श भी नहीं करती है। किसी प्रकार के अपशब्दों का उच्चारण इन्होंने बाल्यकाल से ही नहीं सीखा। दिव्यानन्द मौन साधक हैं अत्यल्प बोलना अपने विचारों के अनुकूल जीवन जीना ध्येय रहा है। यह विचारो से भी अपरिग्रही अनावश्यक विचार इनमें उत्पन्न स्थान नहीं पाते हैं। इसीलिए इनके स्वभाव में चंचलता न होकर स्थिरता रहती है जो गुण योग साधकों में बड़ी साधना से प्राप्त होते हैं वे गुण इनमें प्रारब्धवश स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। आज आर्यसमाज को ऐसे निश्छल सत्यनिष्ठ समर्पित व्यक्तियों की अत्यन्त आवश्यकता है। आप महर्षि दयानन्द के अनन्यभक्त हैं। आर्यसमाज के लिए पूरी तरह समर्पित हैं। उनके स्नातक बनने पर समस्त आर्यजन, गुरुकुल परिवार, तपोभूमि परिवार, गौरवान्वित है और सभी की आशायें यही हैं कि अपनी योग्यता को निरन्तर बढ़ाते हुए भौतिक सफलतायें प्राप्त करें। साथ आध्यात्म क्षेत्र में भी अपने नाम के अनुसार गुणों का विकास सर्वहित संगठन आर्यसमाज के उज्जवल सितारे बनकर संसार का पूर्ण हित कर अपने मानव जीवन को धन्य करें। ❁

बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार।
'शंकर' होता है वहाँ, सबका सर्व सुधार।।

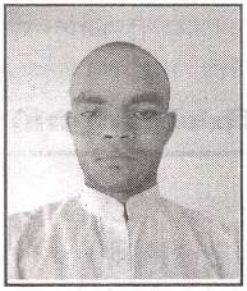

गुरुकुल के नव–स्नातक ब्रह्मचारी रवि शास्त्री

ब्र. रवि शास्त्री (पूर्व नाम एवनसिंह) जनपद विदिशा (म.प्र.) के प्रतापपुर के निवासी हैं। आपके पिता श्री अनन्तसिंह व माता श्रीमती सावित्रीबाई एक मध्यम वर्गीय कृषक हैं। वर्धा आर्यसमाज विदिशा के कार्यक्रमों में आस–पास के क्षेत्रों में महर्षि की विचारधारा प्रचार हुआ। ब्रह्मचारी रवि शास्त्री पर भी प्रभाव पड़ा और घर त्याग गुरुकुल वृन्दावन 2011 में प्रविष्ट हुए। गुरुकुल वृन्दावन के पुनः संचालन के समय जिन नवीन ब्रह्मचारियों का प्रवेश हुआ उनमें रवि शास्त्री भी प्रमुख थे। अनेकों झंझावतों में भी ब्रह्मचारी ने दृढ़ता दिखाई, गुरुकुल स्थिर करने में इसका विशेष योगदान और गुरुकुल पुनः प्रगति पथ पर अग्रसर है उसमें इनका विशेष योगदान है। शिक्षाकाल में गुरुकुल की तन–मन से सेवा करने में यह अग्रणी रहे। कभी–कभी असमाजिक तत्वों ने उपद्रव किये ब्रह्मचारियों को भयभीत कर भाग जाने का षडयंत्र भी किया पर उन सारे घटनाक्रम में जो ब्रह्मचारी अडिग रहे उनमें ब्रह्मचारी रवि का महत्वपूर्ण योगदान रहा। परमात्मा की व्यवस्थायें बड़ी विचित्र हैं। जीवन को किस प्रकार कहाँ जाना है यह भी वही जानता है। ब्रह्मचारी रवि की पृष्ठभूमि यद्यपि आर्यसमाज की नहीं है फिर भी इसकी विचारधारा में आर्यत्व ओत–प्रोत हैं। स्वभाव से आर्योचित आचरण इसमें जीवन की प्रारम्भ अवस्था से है। अन्यथा आर्यत्व की ओर उन्मुख होकर बाल्यावस्था में गुरुकुल में आकर अध्ययन करना विपरीत परिस्थितियों में विचलित न होकर बिना ईश्वरीय कृपा और पूर्वजन्म के संस्कारों से सम्भव ही नहीं है। प्रत्येक कार्य को दायित्वपूर्ण ढंग से निभाना इसके स्वभाव में रहा है किसी प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग भी मैंने कभी ब्रह्मचारी के मुख से नहीं सुना, आधुनिक के नौजवानों के निराशापूर्ण आचरण से शिक्षक भी निराश हो जाते हैं पर ब्रह्मचारी रवि शास्त्री जैसे छात्र अपने श्रेष्ठाचार के द्वारा निरन्तर आशा का संचार करते हैं इन्होंने छात्र जीवन में निरन्तर सेवा धर्म निभाते हुए अष्टाध्यायी महाभाष्य तक अध्ययन पूर्णनिष्ठा से किया। शास्त्री आदि उपाधियों को भी प्राप्त किया, गुरुकुल में पाठ्यक्रम पूरा करके स्नातक बनने पर सभी गुरुकुल परिवार, आर्यजन व तपोभूमि परिवार गौरव का अनुभव कर रहा है। साथ ही आशा सभी करते हैं कि ब्रह्मचारी रवि शास्त्री अध्ययन–अध्यापन करते हुए वैदिक संस्कारों से युक्त अन्य छात्रों को लाभ देते हैं। जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में नई ऊँचाइयाँ प्राप्त करके आर्यसमाज को नया सम्बल प्रदान करेंगे और अपने व राष्ट्र कल्याण के पथ दृढ़ता से बढ़ने के लिए गुरुवर विरजानन्द और महर्षि दयानन्द के तप–त्याग को सदा स्मरण रखेंगे। ❁

जो विद्या बल वित्त का, सुख भोगें भरपूर।
वे रहते हैं अन्त लौं, घोर नरक से दूर।।

प्रेम

रचयिता- विश्वव्याप्त (प्रभा)

है कौन सा वह तत्त्व जो सारे भुवन में व्याप्त है,
ब्रह्माण्ड पूरा भी नहीं जिसके लिये पर्याप्त है?
है कौन सी वह शक्ति, क्यों जी! कौन सा वह भेद है?
बस, ध्यान ही जिसका मिटाता आपका सब शोक है।

वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।
है अचल जिसकी मूर्ति, हाँ-हाँ, अटल जिसका नेम है।

बिछुड़े हुओं का हृदय कैसे एक रहता है, अहो!
वे कौन से आधार के बल कष्ट सहते हैं, कहो?
क्या क्लेश? कैसा दुःख? सबको धैर्य वे सह रहे,
है डूबने का भय न कुछ, आनन्द में वे बह रहे।
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।

क्या हेतु, जो मकरंद पर हैं भ्रमर मोहित हो रहे?
क्यों भूल अपने को रहे, क्यों सभी सुधि-बुधि खो रहे?

किस ज्योति पर निश्शंक हृदय पतंग लालायित हुए?
जाते शिखा की ओर, यों निज नाश-हित प्रस्तुत हुए?
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है वह प्रेम है।

आकाश में, जल में, हवा में, विपिन में, क्या बाग में
घर में, हृदय में, गाँव में, तरु में तथैव तड़ाग में,
है कौन सी वह शक्ति, जो है एक सी रहती सदा,
जो है जुदा करके मिलाती, मिला कर करती जुदा?"
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।

"चैतन्य को जड़ कर दिया, जड़ को किया चैतन्य है,
बस, प्रेम की अद्‌भुत अलौकिक उस प्रभा को धन्य है।"
क्यों, कौन सा है वह नियम, जिससे कि चालित है मही?
वह तो वही है, जो सदा ही दीखता है सब कहीं।
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।

देखिये, घनघोर कैसा शोर आज मचा रहा।
सब प्राणियों के मत्त मनोमयूर अहा! नचा रहा॥
ये बूँद हैं या क्या! कि जो यह है यहाँ बरषा रहा?
सारी मही को क्यों भला इस भांति है हरषा रहा?
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।

यह वायु चलती वेग से, ये देखिये तरुवर झुके।
है आप अपनी पत्तियों में हर्ष से जाते लुके।
क्यों शोर करती है नदी, हो भीत परावार से?
वह जा रही उस ओर क्यों? एकान्त सारी धार से?
वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है, वह प्रेम है।

यह देखिये, अरविन्द से शिशुवृन्द कैसे सो रहे।
हैं नेत्र माता के इन्हें लख तृप्त कैसे हो रहे
क्यों खेलना, सोना, रुदन करना, विहँसना आदि सब
देता अपरिमित हर्ष उसको, देखरी वह इन्हें जब?
यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है।

है वायु से यह बेल हिलती, बेल से फल हिल रहे,
हैं इन फलों के साथ हिलते, फूल कैसे खिल रहे।
सब एक होकर नाचते हैं, पक्षियों के गान पर।
कैसा प्रमोद मना रहे, संसार सुखमय मान कर।
यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है।

उस दूरवर्ती खेत में वे गाय कैसी चर रहीं,
ये बछड़िया हैं कूद कूद कलोल कैसी कर रहीं।
इस नीम के नीचे पड़ा यह ग्वालिया है गा रहा।
कैसा यहाँ अपनी अनोखी मधुर तान सुना रहा॥
यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है।

"गाते हुए हल जोतते, सन्तोष सुख से जो सने,
वे खेतिहर हैं, आप अपने खेत के राजा बने।
हैं दीन, तो भी क्या हुआ, सौजन्य-श्री-सम्पन्न हैं।
भूखे रहें खुद आप पर देते सबों को अन्न हैं!"
यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है।

रण-भूमि का तो देखिये, ये वीर कैसे डट रहे।
कर 'आत्मत्याग' स्वदेश के हित खेत बन कर कट रहे,
इनका पराक्रम, शौर्य अनुकरणीय होगा, लोक में।
आह्लादकारी हर्ष में हाँ धैर्यदायी शोक में-
यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है, यह प्रेम है।

इस प्रेम के ही हाथ से
गरदन हजारों कट गई,
हाँ, छातियाँ आघात के ही
बिन हजारों फट गईं।

है कौन पा सकता भला इस प्रेमनद का पार है?
है कौन वह, जो रत्न खोजे, विकट इसकी धार है?

यह व्याप्त है सब में, अजी यह सभी का आधार है।
यह स्वयं जड़, चेतन, सगुण, निर्गुण सभी का सार है॥
पाठक महोदय! अधिक क्या, यह स्वर्ग-सुख का द्वार है।
जगदीशमय है प्रेम निश्चय, प्रेममय संसार है॥

इस दीन भारत में कहीं जो
प्रेम का संचार हो,
तो फिर भला क्या पूछना
सब भाँति बेड़ा पार हो।

है मोह-रात्रि यहाँ कहीं
जो प्रेम का दीपक जले,
तो कृष्ण जी की दिव्य छवि
वह देखने को फिर मिले।

अज्ञान-कंस विनष्ट हो, जब ज्ञान रूप रमेश से,
तब प्रेम से बँध जायँ हम, पीछा छुटे इस क्लेश से।
है पूर्व में यह दीखती, टुक देखना, कैसी प्रभा?
हाँ-हाँ, प्रभा ही है, विनिद्रित जग उठी दिनकर-सभा॥

चार वर्णों के नाम

लेखकः दामोदर सातवलेकर

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः
पृथग्देवा अनु–संयन्ति सर्वे।।
गंधर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशताः
षट् सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति

अर्थ– देव, पितर, गंधर्व और देवजन ये (सर्वे) सब ब्रह्मचारी अनुसरते हैं। (त्रयःत्रिंशत्) तीन, तीस (त्रिंशताः) तीन सौ और (षट्–सहस्राः) छः हजार देव हैं। (सर्वान् देवान्) इन सब देवों का (सः) वह ब्रह्मचारी अपने तप से (पिपर्ति) पालन करता है।

चार वर्णों के नाम

"देव, पितर, गंधर्व, देवजन" ये चार शब्द क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र शब्दों के वाचक हैं। चातुर्वर्ण्य के समानार्थक कई शब्द वेद में आते हैं, उनका ज्ञान निम्न कोष्टक से होगा–

देवाः	पितरः	गंधर्वाः	मनुष्याः
देवाः	राक्षसाः	गंधर्वाः	मनुष्याः
सुराः	असुराः	किंनराः	पिशाचाः
यक्षाः	राक्षसाः	किंनराः	गृह्यकाः
देवाः	पितरः	गंधर्वाः	देवजनाः
ब्राह्मणाः	क्षत्रियाः	वैश्याः	शूद्राः
अग्निः	इंद्रः	मरुतः	विश्वेदेवाः

यद्यपि यह कोष्टक परिपूर्ण नहीं है तथापि इस कोष्टक से ज्ञात हो सकता है कि, चातुर्वर्ण्य का सम्बन्ध विविध वर्णनों में किन–किन शब्दों से बोधित हो सकता है।

केवल **"देव"** शब्द ब्राह्मणत्व का वाचक यद्यपि विशेष प्रयुक्त नहीं है, तथापि उक्त चार शब्दों में जिस समय प्रयुक्त होता है, उस समय वह ब्राह्मण्य का बोध करता है, इसमें सन्देह नहीं है, **"यक्ष"** शब्द याजक का भाव बताता है। **"पितर"** शब्द का अर्थ "रक्षक" है। **वही भाव आरम्भ में "राक्षस" शब्द में था, परन्तु जब रक्षकों ने रक्षा करने का अपना पवित्र काम छोड़ दिया और वे रक्षणीयों का ही भक्षण करने लगे, तब "राक्षस, रक्षः" आदि शब्दों का भाव विरुद्ध हो गया।** **"असुर"** शब्द भी (अस्यति) शत्रुओं को दूर करने वाला क्षत्रिय अर्थ में मूलतः है। परन्तु इस शब्द का अर्थ, क्षत्रियों का स्वभाव स्वार्थी होने के पश्चात् बदल गया। **" गं–धर्म"** शब्द पृथिवी का धारण करने वाला इस अर्थ में

प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अन्य शब्दों के सम्बन्ध होंगे। पाठक इसका विचार करें।

ब्रह्मचारी की जिम्मेवारी

ये चारों वर्णों के लोक ब्रह्मचारी का अनुकरण करते हैं। यह मंत्र का प्रथम कथन है। ब्रह्मचारी जैसा आचरण करता है वैसा व्यवहार इतर लोग करने लगते हैं। यह बात ब्रह्मचारी को अवश्य ध्यान में धरना चाहिये। इससे ब्रह्मचारी पर एक विलक्षण जिम्मेवारी आ जाती है। यदि कोई दोष ब्रह्मचारी के आचरण में होगा, तो उसका अनुकरण इतर लोक करेंगे; विशेषतः गुणों की अपेक्षा दोषों का अनुकरण अधिक होता है। श्रेष्ठ मनुष्य जैसा आचरण करता है, वैसा इतर लोक करते हैं ऐसा कहते हैं। परन्तु यह नियम सदाचार के अनुकरण की अपेक्षा दुराचार के अनुकरण के विषय में अधिक सत्य प्रतीत होता है!! यदि बड़ा आदमी अच्छा आचरण करेगा, तो उसके अनुसार छोटे आदमी आचरण करेंगे, यह निश्चित नहीं है; परन्तु यदि बड़ा आदमी बुरे कार्य करेगा, तो बहुधा उसका अनुकरण अन्य लोग करने लगेंगे। इसलिये बड़े आदमी को अपना आचरण विचारपूर्वक शुद्ध रखना चाहिये। यही जिम्मेदारी ब्रह्मचारी पर भी रहती है, क्योंकि अपने-अपने स्थान पर ब्रह्मचारी की प्रशंसा होगी, वहां के छोटे मोटे लोक उसको देखकर उसके समान बनने का यत्न करेंगे। जो बाहर से विशेष विद्या पढ़कर आता है, उस पर इसी प्रकार जिम्मेवारी होती है, इसलिये नव शिक्षितों को अपनी जिम्मेवारी समझकर ही व्यवहार करना उचित है।

व्यापक चातुर्वर्ण्य

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार अवस्थाओं के बोधक हैं। इसलिये इनका स्वरूप केवल मनुष्यों में ही है, ऐसा समझना गलत है। प्रत्येक शरीर में चातुर्वर्ण्य है, शरीर में सिर ब्राह्मण है, छाती और बाहू क्षत्रिय है, पेट और ऊरु वैश्य हैं तथा पांव शूद्र हैं। प्राणिमात्र के शरीर में यह चातुर्वर्ण्य है। दिन के समय में भी चातुर्वर्ण्य है, प्रातःकाल से सबेरे नौ बजे तक का समय ब्राह्मसमय है, दोपहर का समय क्षात्र समय है, शाम का समय वैश्य है और रात्रि का अंधकारमय समय शूद्र काल है। संतत्सर का विभाग भी इसी प्रकार है, बसन्त ऋतु ब्रह्म ऋतु है, ग्रीष्म ऋतु क्षात्र ऋतु है, वर्षा और शरद् वैश्य ऋतु हैं और शेष शूद्र ऋतु हैं। बाह्य देवताओं में अग्नि, ब्रह्मणस्पति आदि ब्राह्य देवतायें हैं, इन्द्र वायु रुद्र आदि क्षात्र देवतायें हैं, मरुत् आदि वैश्य देवता हैं और विश्वेदेव आदि शूद्र देवता हैं। प्रत्येक देवता में भी ब्राह्मण क्षत्रियादि भेद हैं, जैसा-अग्नि में ब्राह्य अग्नि, क्षात्र अग्नि, आदि चार प्रकार हैं; रुद्र में भी ब्राह्मरुद्र, क्षात्ररुद्र आदि चार प्रकार हैं, इसी रीति से अन्य देवताओं में समझना चाहिये। इसी रीति से वृक्षों में, पशुपक्षियों में, स्थावर पदार्थ पत्थर, धातु, रत्न आदिकों में भी चातुर्वर्ण्य है। यह चातुर्वर्ण्य की सूक्ष्म और व्यापक कल्पना जानने के पश्चात् ही वैदिक चातुर्वर्ण्य का भाव विदित हो सकता है। तात्पर्य चातुर्वर्ण्य जैसा आजकल समझा जाता है, वैसा केवल मनुष्यों में ही नहीं है, प्रत्युत प्रत्येक व्यष्टि में और समष्टि में विद्यमान है। व्यक्ति में, समाज में और जगत् में यह चातुर्वर्ण्य गुणकर्मशः ही व्यापक है।

प्रत्येक प्राणिमात्र में जो चातुर्वर्ण्य है, वह ब्रह्मचारी के देह में भी है। अर्थात् इसके देह में चार वर्ण एक दूसरे के साथ मिल जुल कर रहते हैं, अनुकूल होकर रहते हैं। शरीर के अन्दर ज्ञान ग्रहण करके ज्ञान संचय करनेवाले जो भाग हैं उनको देव किंवा ब्राह्मण समझिये। देह में विरोधी दोषों को हटानेवाले जो सूक्ष्म संरक्षक विभाग होते हैं उनको क्षत्रिय मानिये। जो पोषक अंश होते हैं उनको वैश्य कह सकते हैं, और जो स्थूल भारवाहक अंश होंगे उनको शूद्र कहिये। शरीर में मज्जा ब्राह्मण है, वीर्य क्षत्रिय है, रस वैश्य है और अस्थि शूद्र है, उनको आप चाहे अन्य शब्द भी प्रयुक्त कर सकते हैं, यहां केवल उक्त कथन का भाव ध्यान में धारण करना चाहिये। चातुर्वर्ण्य के चार शब्द जो इस मंत्र में आ गये हैं, वे भी गुण कर्म बोधक तथा भाव बोधक ही हैं।

मंत्र में कहा है कि देव, पितर, गंधर्व और देवजन ये सब ब्रह्मचारी के अनुकूल होकर चलते हैं, अर्थात् अनुकूल बनकर अपना अपना कार्यव्यवहार करते हैं। यह जितना बाह्य समाज में सत्य है, उससे कई गुणा अधिक शरीर के शक्ति केन्द्रों के अन्दर सत्य है। शरीर के अस्थि–रस–वीर्य–मज्जा आदि मूलभूत आधारतत्व ब्रह्मचारी के अनुकूल होकर रहते हैं। ब्रह्मचारी के शरीर की सब शक्तियां उसके अनुकूल रहती हैं। क्योंकि वह संयमी पुरुष होता है। शरीर में अंगों, अवयवों, इन्द्रियों और तत्वों का चातुर्वर्ण्य है, वह सब ही उसको अनुकूल होता है; यह बात अब पाठकों के मन में आ गई होगी। उक्त रीति से विचार करने पर इस वैदिक भाव का प्रकाश पाठकों के मन में पड़ सकता है, और वैदिक विचार की सूक्ष्मता भी ज्ञात हो सकती है।

तीन और तीस देव!

अग्नि, वायु, इन्द्र आदि बाह्य देवताओं में चार्तुर्ण्य है, इतना कहने मात्र से शरीर के अन्दर देवतांशों में चातुर्वर्ण्य है, यह बात सिद्ध ही हो चुकी है; क्योंकि सम्पूर्ण देवताओं के अंश अपने शरीर में विद्यमान हैं। अर्थात् जो उनके गुणधर्म बाहर हैं, वही अन्दर हैं; इसमें विवाद नहीं हो सकता। अब इन देवताओं की संख्या कितनी है, इसका उत्तर इस मंत्र ने निम्न प्रकार दिया है–

त्रयः	तीन	3
त्रिंशत्	तीस	30
त्रिशताः	तीन सौ	300
षट् सहस्राः	छः हजार	6000

पहले मंत्र के स्पष्टीकरण के कोष्टक में बताया ही है कि, नाभि से निचला भाग पृथिवी स्थानीय, नाभि से गले तक का भाग अंतरिक्ष, स्थानीय और सिर द्युस्थानीय है। अर्थात् शरीर के अन्द के इन तीनों स्थानों में बाहर के तीनों स्थानों में रहनेवाले सब देव हैं। वेद में अन्यत्र कहा है कि प्रत्येक स्थान में ग्यारह ग्यारह देवतायें हैं, उनमें भी दस गौण और एक मुख्य हैं।

सिर में मस्तिष्क है उसकी देवता सूर्य है। हृदय में मन और उसकी देवता चन्द्र किंवा इन्द्र है। तथा

जठर में अग्नि देवता है। इस प्रकार तीनों स्थानों में ये तीन देवतायें मुख्य हैं इस प्रत्येक देवता के अधीन दस गौण देवतायें हैं। तीन मुख्य और तीस गौण मिलकर 33 देवतायें होते हैं। प्रत्येक देवता एक एक अंग में रहता है। अर्थात् 33 देवताओं के अधीन 33 अंग हैं, इस भाव को लेकर निम्न मंत्र देखिये–

(1) **यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवता अंगे सर्वे समाहिताः।। 13।।**

(2) **यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवता अंगे गात्रा विभेजिरे।।**
तान्वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः।। 27।।

(3) **यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।।**
निधिं तमद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ।। 23।। अथर्व 10। 7

"(1) जिसके अंग में तेहत्तीस देव रहे हैं। (2) जिसके अंगों के गात्रों में तेहत्तीस देव विशेष सेवा करते हैं, उन तेहत्तीस देवों के ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही केवल जानते हैं। (3) तेहत्तीस देव जिसका कोश सर्वदा रक्षण करते हैं, उस निधि को आज कौन जानता है।।"

यह वर्णन परमात्मा में पूर्ण रूप से और जीवात्मा में अंश रूप से लगता है। क्योंकि यह बात पूर्व स्थल में कही ही है कि, अग्नि इन्द्र और सूर्य आदि देवतायें पूर्ण रूप से परमात्मा के साथ जगत् में हैं और अंश रूप से जीवात्मा के साथ शरीर में हैं। परमात्मा का व्यापकत्व और महत्व तथा जीवात्मा का अव्यापकत्व और अणुत्व, छोड़ दिया जाय, तो **तत्वरूप से दोनों का वर्णन एक जैसा ही हुआ करता है।** वेद में इस प्रकार के वर्णन सहस्रों स्थानों में हैं।

तीन और तीस देवों का यह स्वरूप है। ये तेहत्तीस देव मैरुपर्वत में रहते हैं। **"मेरुपर्वत"** पृष्ट वंश ही है जिसको रीढ़, मेरुदंड आदि कहते हैं। इस पृष्ट वंश में छोटी छोटी हड्डियां एक के ऊपर दूसरी ऐसी लगीं हैं, और बीच के संधिपर्व में एक एक ग्रंथी है, जिस ग्रंथी में इन देवतांशों का स्थान है। योग में जिस **"ग्रंथीभेदन"** का महात्म्य वर्णन किया है, वे ग्रंथियां ये ही हैं। प्राणायामादि साधनों द्वारा प्राण को इनमें से ले जाना होता है। योग साधन में इस प्रत्येक स्थान का अत्यन्त महत्व है। इन सब देवताओं की ग्रंथियों में से गुजरकर मेरुपर्वत अथवा मेरुदंड के सबसे ऊपर ले भाग में, मस्तिष्क के मध्य में जब आत्मा के साथ प्राण पहुंचता है, तब उस स्थिति को **"ब्रह्मलोक की प्राप्ति"** कहते हैं।

ये तेहत्तीस देवतायें अथवा तीन और तीस देवतायें ब्रह्मचारी के आधीन होती हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रम में वीर्य रक्षण पूर्वक योगाभ्यास द्वारा इन सबको स्वाधीन ही करना होता है। इसलिये इस ब्रह्मचर्य सूक्त में बारम्बार कहा है कि, **ये सब देव ब्रह्मचारी के अनुकूल रहते हैं, ब्रह्मचारी इन सब देवों को पूर्ण तृप्त और स्वाधीन करता है।** पूर्ण करने का तात्पर्य प्राण से भरना और पूर्ण विकसित करना है।

उक्त तेहत्तीस देवों से भिन्न(त्रिशताः) तीन सौ देव हैं। तीन स्थानों में सौ सौ मिलकर तीन सौ होते हैं। मस्तिष्क के स्थान में सौ, हृदय के स्थान में सौ और नाभिस्थान में सौ, इस प्रकार ये **"शिवजी के त्रि–शत–गण"** होते हैं। साथ साथ (षट् सहस्राः) छः हजार भी हैं। पृष्ट वंश के साथ साथ छः चक्र हैं

(1) गुदा के स्थान में मूलाधार चक्र, (2) नाभिस्थान के पास स्वाधिष्ठान चक्र और (3) मणिपूरक चक्र, (4) हृदयस्थान के पास अनाहत चक्र, (5) कंठ स्थान में विशुद्धिचक्र और (6) दोनों भौंहों के बीच में अज्ञाचक्र है। प्रत्येक चक्र में सहस्रों शक्तियों के अंश केन्द्रित हुए हैं। इस प्रकार छः स्थानों में छः हजार शक्त्यिां बंट गयी हैं। यहां ''तीन सौ'' और ''छः हजार'' यह संख्या गिनती की है अथवा बहुत्व दर्शक ही है इस विषय में मुझे स्वयं कोई ज्ञान नहीं है। अनुभवी योगी ही इस विषय में कह सकता है। इसलिये इस विषय में अधिक लिखना उचित भी नहीं है।

यह देवताओं की संख्या वेदों और और ब्राह्मणों में 3; 33; 330; इसी प्रकार बढ़ाई है, सहस्रों, लाखों और करोड़ों तक यह गिनती गई है मस्तिष्क मज्जातंतुओं का मुख्य केन्द्र है, उसके आधीन मस्तक, हृदय और नाभि ये तीन स्थान हैं; प्रत्येक स्थान में दस दस गौण विभाग मिलकर तीस, उसके और सूक्ष्म सौ सौ विभाग मिलकर तीन सौ, इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाग अगणित हुए हैं। इनको करोड़ों में बांटना अथवा लाखों में बांटना यह केवल कल्पनागम्य ही होगा; प्रत्यक्ष गिनती का कदाचित् न होगा। परन्तु इस विषय में सत्यासत्य निर्णय विशेष अधिकारी पुरुष ही कर सकता है।

इस प्रकार (1) तीन, (2) तीस, (3) तीन सौ और (4) छः हजार'' देवताओं का स्वरूप, स्थान और महात्म्य है। ब्रह्मचारी के आधीन ये सब देव रहते हैं। जो ब्रह्मचर्य नहीं रखता और योगादि साधन नहीं करता, उसके आधीन उक्त देव रह नहीं सकते। जब ये देव स्वाधीन नहीं रहते, स्वेच्छा से अपना व्यवहार करने लगते हैं, तब बड़ी भयानक अवस्था हो जाती है। प्रत्येक इन्द्रिय स्वच्छंद होने से मनुष्य की अवस्था कितनी गिर सकती है, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं।

ब्रह्मचर्य, वीर्य-रक्षण, सद्भथपठन, सत्समागम, उच्च विचारों का धारण, यम नियम, ईश्वर उपासना आदि सब साधनों से यही करना है कि, अपने शरीर में विद्यमान देवताओं के अंश अपने आधीन हो जायं, अर्थात् अपने अन्दर की सम्पूर्ण शक्तियां स्वाधीन होकर आत्मा की शक्ति पूर्णता से विकसित हो जाय।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की परमसिद्धि का वर्णन इस मंत्र में हुआ है। पाठक इस मंत्र के अर्थ की अधिक खोज करें और जहां तक हो सके वहां तक प्रयत्न करके इस दृष्टि से अपनी उन्नति करने का प्रयत्न करें। ❁

शुभ सत्य-सनातन धर्म वही, जिसमें मत पन्थ अनेक नहीं।
बल-बर्द्धक वेद वही जिसमें, उपदेश अनर्थक एक नहीं।
अविकल्प समाधि वही जिसमें, सुख-संकट का व्यतिरेक नहीं।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिसके मन में अविवेक नहीं।

प्रतीक्षा

लेखकः रमेश शर्मा 'बन्धु'

'कब आया रे, राजू?'

'बापू, अभी-अभी', खाट से उतरकर चरण स्पर्श करते हुए मैंने उत्तर दिया।

'और सब ठीक तो है?' मुझसे पूछते हुए बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए माँ से बोले, 'अरे तारा की माँ इसके खाने-पीने का इन्तजाम कर, कुछ लम्बा रास्ता तय करके आया है, भूखा होगा। मगर तूने यह सूरत कैसे बना रखी है?'

'वैसे ही, बापू, वह मर गयी है न ?' माँ को चुप देख उत्तर मैंने दे दिया।

'अरे राजू इसे तू समझा, नहीं तो यह पागल हो जायेगी। उसका मरना ही अच्छा था। बेचारी ने कितना कुछ सहा। यह भगवान ने सचमुच बहुत अच्छा किया। मगर पता नहीं यह क्यों रो-रो कर मरी जा रही है? कहते हुए बापू बाहर चले गए। उसके बाद घर में बोझ-सा छाया रहा।

उसे मैं चाची कहा करता था। चाची की कहानी बड़ी दुखदायक है, सचमुच हृदय को पिघलाने वाली। वह नारी थी, इसलिए सब कुछ सहन करती रही, अन्यथा जितना कुछ उसने सहा, यदि कोई पुरुष होता तो कभी का टूट गया होता या अपने को बदल लिया होता। किन्तु उसने सब कुछ धरती की तरह सहा, गौरव एवं मर्यादा के साथ। वे लोग दूसरी जाति के थे। फत्तू चाचा जब अट्ठारह वर्ष के थे तो उनका विवाह कर दिया गया था। स्फूर्ति और मस्ती के साथ भरी प्रकृति और हंसमुख स्वभाव। अपने काम में सज्जनता मानो उसे वरदान में मिली थी। चाची ऐसी थी कि चार घरों में लम्बे समय तक चर्चा का विषय बनी रही थी। किन्तु फत्तू चाचा भी अपने स्वभाव का एक ही आदमी था। सोने-सी सम्पत्ति पाकर भी उससे बँध न सका।

विवाह को अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि स्वतन्त्रता संग्राम का बिगुल जो अभी तक कहीं दूर ही बज रहा था, उसके कानों तक आ पहुंचा। नया-नया खून, शरीर में पौरुष का सागर और हृदय में स्वतन्त्रता का अनुराग। बिना किसी को बताये किसी उग्र क्रान्तिकारी संगठन में भर्ती हो गया फत्तू चाचा।

फिरंगी सरकार का बोलबाला था। उग्र क्रान्तिकारियों को खोज-खोज कर तोपों से उड़ाया जा रहा था। किन्तु क्या कभी आजादी के परवानों को अत्याचार की आग डरा पायी है? कुछ दृढ़प्रतिज्ञ क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में युवक-मण्डल छिपे रूप में जापान, वर्मा, सिंगापुर आदि में जाकर रास-बिहारी बोस के नेतृत्व में पलते हुए संगठन में भर्ती हो रहे थे। चाचा फत्तू भी उन्हीं दीवानों में से एक था। आगे की सोची न पीछे की, सिंगापुर जाने वालों में नाम लिखा दिया।

एक माह बाद सिंगापुर जाने से पहले इधर-उधर भटकते चाचा एक बार गये रात घर आये। उनके आने की खबर सुनकर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो चली। सभी ने उन्हें उनकी मूर्खता पर कोसा, 'तू ही जाकर देश को आजाद करायेगा। तेरी ही कसर रह गयी थी, जो वहाँ जाये बगैर बात ही नहीं बनती।'

'अगर फौज में ही जाना था तो दूसरे की बेटी को क्यों ब्याह कर लाया था? अभी बेचारी, एकाध-दोबार की आनीजानी भी नहीं हुई, जो भय खुल जाता', जशोदा काकी बोली।

और रम्भू जैसे महामूर्ख ताऊ ने भी उस बहती उपदेश-गंगा में हाथ धोये। 'हमारी मानो तो एक काम करो। इसके हाथ-पैर बांधकर कोठे में बन्द कर दो। फिर देखें कैसे जाता है, ये? चला है देश आजाद कराने। लाला, यह पता नहीं है कि इन गोरों के पास ऐसी-ऐसी बन्दूकें हैं, जिनमें एक ही बार में 27-28 गोलियां आ जाती हैं।'

और फिर धीरे-धीरे चाचा फत्तू के मौन ने सब शांत कर दिया था। उनका निश्चय पूर्ववत् अटल था। इन्हीं बातों में रात का आधा समय बीत चुका था। अवशिष्ट समय में चाचा ने अन्तिम सामीप्य सुख भोगा। चाचा के बापू तो गुस्से से भरे बोले ही नहीं।

दिन निकलने से पूर्व ही चाचा ने पुलिस के भय से गांव छोड़ दिया था। जाते-जाते चाची को देश आजाद कराकर शीघ्र लौटने का वचन भी दे गये थे। लच्छो चाची के हाथ की मेंहदी अभी सूख भी नहीं पाई थी कि कहीं से यह वियोग की दुर्गन्ध आकर बस गई।

माँ ने सुबह जाकर चाची का आंसुओं से भरा मुख पोंछा था और आंसुओं से भरी आंखों से आकर हम सबको उसकी व्यथा-कथा सुनाई थी।

इन बातों को धीरे-धीरे पांच वर्ष बीत गये। चाचा के पत्र आते रहे। सभी में एक ही आश्वासन कि बस आजादी मिलने में कुछ ही दिन की देर है। और तभी दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया, पत्र आने भी बन्द हो गये।

चाची ने अपने लहलहाते यौवन के द्वार पर चाचा के आने के क्षण की प्रतीक्षा का ताला डाल दिया। प्रतीक्षा, प्रतीक्षा- इसी कीर्तन की टेर में अपनी जवानी को कलंक से बचाये रहीं।

महायुद्ध शान्त हुआ। चाची की आंखों में चमक जागी। सोचा, अब लौटकर आ रहे होंगे। किन्तु तभी एक वज्रपात और हुआ, जिसने चाची को चाचा से और दूर कर दिया। चाचा का अन्तिम लम्बा पत्र आया। जिसमें लिखा था कि उनका संगठन अब आजाद हिन्द फौज में बदल गया है। सुभाष के नेतृत्व में आजादी मिलनी अब दूर नहीं।

चाची को लगा कि उसे भाग्य ने फिर एक बार स्वर्ग के द्वार से ढकेल दिया है। वह सिसक भी नहीं सकी, सब कुछ वैसे ही चलता रहा, जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो।

किन्तु कुछ वर्ष बाद ही सुभाष बाबू की मृत्यु का हृदयविदारक दुःखद समाचार किसी ने आकर उसे सुनाया। चाची सचमुच सिसक उठी। 'देश आजाद हुआ भी नहीं और सुभाष चले गये?' किन्तु दूसरे

ही पल हंसी, 'नहीं, सुभाष चले गए तो क्या हुआ उसके मन मन्दिर का देवता तो है, वह आजाद करायेगा भारत को। उसके लिए मृत्यु को भी एक बार रुकना पड़ेगा।' चाची की बात सुनकर गांव वालों में किसी ने उसे पागल कहा और किसी ने पत्थर जैसे कठोर दिल वाली। मगर वह सब ओर से अनजान अपनी साधना में रत रही।

देश भी आजाद हो गया। फिरंगी मात खाकर अपने देश चले गए। मगर चाची की आशा फिर भी गुलाब न खिला पायी। पता नहीं चाची तो आशा के अणुओं को ही बनी मूर्ति थी। जो आशा का सागर चुक ही नहीं पा रहा था।

सर्वत्र मन्दिरों में उल्लास में डूबे स्वर स्वतन्त्रता की आरती उतार रहे थे, कीर्तन हो रहे थे, घण्टे बज रहे थे। मगर चाची घर के कोने में बैठी निर्निमेष नयनों से अपने अतीत हो निहार रही थी, वह आज किसकी आरती उतारे? उसका मन्दिर तो सुना पड़ा है, किसके लिए घण्टे बजाये, ऐसा कौन है जो उसके घण्टे की झंकार सुनकर पुलकित हो उठे? जब वह स्वयं ही सूखे आंसुओं को चिता पर मृत कामनाओं के शव को लेकर बैठी है।

किन्तु देश का वातावरण अभी पूर्ण रूप से सामान्य नहीं बन पाया था, इसलिए आशा का गला नहीं घोटा जा सकता था।

वैधव्य की कालिमा को चाची तिरस्कारे रही। भला एक देश-भक्त की पत्नी किस प्रकार वैधव्य को स्वीकारे। उसके हृदय में प्रतीक्षा का दीपक जो जल रहा था। आशा के तेल से प्रेरित होकर।

एक दिन मैंने जाकर बताया कि चाची नेता जी सुभाष का पता चल गया है, वे शालमारी के आश्रम में साधु के वेश में रह रहे हैं।

'सच भैया?' चाची ने गद्‌गद कण्ठ से पूछा।

'हाँ, आज के अखबार में छपा है चाची।' कितनी दूर है वह आश्रम यहाँ से राजू?

मुझे उनके पास पहुँचा दे, मैं उन्हें तलाश लूँगी वे वहीं होंगे, भैया जरूर होंगे।'

मरने तक चाची को उस महान् वेदना भरे दुःख के सागर में डूबते-उतरते तीस वर्ष बीत चुके थे। किन्तु प्रतीक्षा और उत्कण्ठा में वही ताजगी थी।

मुझे भली प्रकार याद है, जब एक बार मैंने चाची के सम्मुख सम्भावित शंका को उगलना चाहा था।

'चाची, एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगी?'

'ऐसा क्या कहेगा रे?' चाची ने मुस्कुराकर पूछा।

'पहले बताओ चाची, बुरा तो न मानोगी?'

'पगले अपनों की बात का भी कभी बुरा माना जाता है? कह, क्या कहना चाहता है।

'चाची कहीं ऐसा नहीं कि चाचा इस दुनिया को' आगे के शब्द जबान से फिसल कर रह गए। किन्तु मैं देख रहा था कि चाची के चेहरे पर लटका हुआ प्रश्न पिघल कर उत्तेजना में ढल गया था।

'क्या बकता है रे! यह तू कह रहा है अपने चाचा के लिए?' चाची की आंखों से अनायास ही आंसू फूट निकले, ओढ़नी से पोंछती हुई बोली 'पगले मेरी तपस्या नहीं देख रहा तू? भला भगवान इतना निष्ठुर है कि मुझे फल में उनके दर्शन भी नहीं देगा, देख राजू, देख। वैसे तो तू बेटा है, मुझे कहना शोभा नहीं देता। मगर देख, इन आंखों में देख, विश्वास और प्रतीक्षा की लौ आज भी उतने ही तेज से जल रही या नहीं, जितने तेज से उस दिन जलाई थी जब तेरे चाचा मुझे जीवन की। तेरे चाचा एक दिन जरूर आयेंगे राजू, जरूर आयेंगे।'

और मैं परास्त होकर सदैव के लिए उस कटु-सत्य के उच्चारण की हत्या करके लौट आया था। चाची के दृढ़ विश्वास और दुर्लभ तपस्या में बीसवीं शती के भगवान के द्वार पर ही पड़े रहकर दम तोड़ दिया होगा। बहरे भगवान के कानों तक उसकी करुण पुकार पहुंची भी न होगी। मगर चाची थी कि उसी भगवान की आस्था की वेदी में अपने यौवन की आहुति डालती जा रही थी।

'अभी पिछले दिनों से चाची के शरीर में किसी अव्यक्त बीमारी ने अपना अड्डा जमा लिया था'-ऐसा माँ का विचार था। इसलिए उसने बापू से कहलवाकर इधर-उधर इलाज भी करवाया था तथा कभी-कभी मुझसे भी दवाइयां मंगवाई थी, किन्तु मेरे विचार से चाहे चाची ने माथे पर बिंदी और मांग में सिंदूर भरना न छोड़ा हो, किन्तु वह मेरे द्वारा तभी कही गई शंका को स्वीकारने लगी थीं-मन-ही-मन। हार मानना शायद उसकी प्रकृति न थी, तभी तो जिह्वा से एक बार भी अपनी शंका को व्यक्त नहीं किया।

आज मेरी धारणा पुष्ट हो चुकी है। किन्तु उसकी मृत्यु का समाचार पाकर मुझे दुःख के साथ सुख भी बहुत मिला है, क्योंकि लगता है जिस चाचा की प्रतीक्षा चाची यहां कर रही थी, कहीं वे चाचा स्वयं स्वर्ग में बैठे उसकी प्रतीक्षा न करते रहे हों। ❁

पृष्ठ संख्या 34 का शेष-

वह यह भी सोचने लगा कि बरगद का चले जाना कैसा और गवाही देना कैसा?

बड़ी देर तक बनवारी लौटकर न आया। इस पर मुखिये ने खीझकर कहा, "गुलजारीलाल! तुम बताओ, अब तक वह कहाँ पहुंच गया होगा?"

"शायद अब तक वहाँ पहुंच गया होगा। आज पानी भी बरसा है, तालाब की मेंढ़ पर पैर फिसलते हैं। बनवारी धीरे से चलता होगा," गुलजारी ने उत्तर दिया।

मुखिये ने गुलजारी लाल की पीठ पर घूंसा मारा। नौकरों को बुलाकर आदेश दिया कि गुलजारी को बांधकर कचहरी में बुला लायें। तब चिल्लाकर कहा, "इस गांव में दर्जनों बरगद हैं। तुमने यह कैसे कहा कि बनवारी तालाब की मेंढ़ पर स्थित बरगद के पास गया है? इसका मतलब है कि तुमने उसी बरगद के नीचे उधार लिया है।"

गुलजारी को अपनी भूल मालूम हुई। वह घबरा उठा। अपनी बदनामी न हो, इस ख्याल से झट मुखिये के पैरों पर गिर पड़ा और उसी वक्त घर जाकर बनवारी के चार सौ रुपये लाकर वापस दे दिये। ❁

बरगद की गवाही

लेखिकाः कु० श्रीविद्या

एक बार गुलजारीलाल बनवारी के पास जाकर गिड़गिड़ाया, "भैया, मुझे चार सौ रुपये कर्ज दो।" गुलजारीलाल ने इसके पूर्व कभी उधार न मांगा था, इसलिए बनवारी ने नर्म होकर पूछा, "अच्छी बात है, लेकिन मेरा उधार कब चुकाओगे?"

"एक महने के अन्दर ! मुझे हाल में रुपये मिलने हैं। प्राप्त होते ही चुका दूँगा," गुलजारी ने जबाब दिया।

गुलजारी ने अपने वादे के मुताबिक एक महीने के अन्दर कर्ज नहीं चुकाया। एक-एक करके पूरे बारह महीने बीत गये।

बनवारी से अब रहा न गया। उसने गुलजारीलाल के यहां जाकर अपने कर्ज की याद दिलाई। मगर गुलजारी ने भोला बनकर पूछा, "कैसा कर्ज?"

बनवारी ने सर पीट लिया। तब उसने कब और कहाँ कर्ज दिया था, यह सब उसे समझा दिया।

"यह तो सफेद झूठ है। मुझे कर्ज लेने की जरूरत ही क्या है? सचमुच तुमने मुझे कर्ज दिया हो, तो उसका दस्तावेज लेते आओ। मैं तुम्हारा कर्ज चुकाऊँगा," गुलजारी लाल ने कहा।

दोनों के बीच कहा-सुनी होने लगी। झगड़ा बढ़ता गया। आखिर दोनों जाकर मुखिये से मिले। मुखिया बढ़ा ही होशियार था। दोनों की बातें उसने सावधानी से सुनीं, तब बनवासी से पूछा, "तुम कहते हो कि तुम्हारे पास दस्तावेज नहीं हैं। लेकिन कम से कम तुम्हारा कोई गवाह भी है?"

"गवाह होता तो गुलजारी इस तरह सफेद झूठ नहीं बोल पाता। एक बरगद के नीचे बैठकर मैंने गुलजारी को रुपये दिये हैं," बनवारी ने कहा।

"तो फिर क्या? बरगद तो तुम्हारा गवाह है ही! तुम जाओ, उसे मेरा आदेश सुनाकर यहां बुला लाओ," मुखिये ने कहा।

बनवारी ने अचरज में आकर कहा, "मैं बरगद की बात करता हूं। वह आदमी का नाम नहीं, एक पेड़ का नाम है।"

"हाँ, हाँ ! मैं जानता हूँ। सच्ची बात बताने के लिए पेड़ हो या पत्थर, इससे क्या हुआ? जरूर मेरे बुलाने पर वह इन्कार नहीं करेगा। तुम जाकर उससे कह दो कि मैं बुला रहा हूँ," मुखिये ने कहा।

बनवारी चुपचाप चला गया।

गुलजारीलाल मन ही मन यह सोचकर खुश होने लगा कि अब इसके चार सौ रुपये डूब गये।

-शेष पृष्ठ संख्या 33 पर देखें

के जन्मदिवस सम्बन्धी आहुतियां प्रदान की गयी और समुपस्थित जन समूह में दोनों के उज्जवल भविष्य वैभवपूर्ण जीवन स्वस्थ आयु की कामना करते हुये आशीर्वाद दिया।

इस कार्यक्रम के उपरान्त गुरुकुल में वर्षों से अध्ययनरत तीन ब्रह्मचारियों का जिनमें ब्र. सुनील शास्त्री वर्धा, विदिशा (मध्यप्रदेश), ब्र. रवि शास्त्री वर्धा, विदिशा (मध्यप्रदेश), ब्र. दिव्यानन्द शास्त्री ग्राम-भलुआ, शेखपुरा (बिहार) का स्नातक यज्ञ सम्पन्न हुआ। महर्षि दयानन्द के द्वारा रचित संस्कार-विधि के निर्देशानुसार स्नातकों ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए वैदिक मर्यादा के अनुसार पठन-पाठन के क्रम को निरन्तर चलाने का संकल्प हुआ। उपस्थित विद्वानों, उपदेशकों और आर्यजनों ने ब्रह्मचारियों को उज्जवल भविष्य के लिए शुभकामनायें दीं।

स्नातक दीक्षा के उपरान्त वैदिक आश्रम व्यवस्था का पालन करने वाले कुछ लोगों ने संसार से विमुख होकर आत्मचिन्तन करते हुए आत्म कल्याण की भावना से वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट होने का संकल्प लिया उनके संकल्प के अनुसार उन सभी का विधिवत् वानप्रस्थ दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न कराया गया और उनके वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश के साथ ही नये नामकरण किये गये उनमें प्रमुख कैमथल अलीगढ़ निवासी श्री यादराम दरोगाजी का नाम राममुनि वानप्रस्थ रखा गया, नरी निवासी रामशरण जी का नाम ओममुनि, बाद निवासी राजनसिंह जी का नाम राजमुनि, चौमुंहा निवासी छिद्दासिंह का नाम वेदमुनि, देवेन्द्रसिंह जी का नाम देवमुनि रखा गया। साथ ही सबने संकल्प लिया कि अब हम सब प्रभु की कृपा से स्वाध्याय और आत्मचिन्तन करते हुये जो समय अतिरिक्त बचेगा उसे आर्यसमाज की सेवा में लगायेंगे। उनके इस पावन संकल्प का उपस्थित जनसमूह ने करतल ध्वनि से स्वागत किया। आश्रम व्यवस्था की मर्यादा का पालन करने के लिए सभी वानप्रस्थों को मंच की ओर से शुभकामनायें दी गयीं। साथ ही प्रभु से प्रार्थना की कि ये वानप्रस्थ लोग अपने संकल्प में सफल हों।

इस प्रकार से विभिन्न प्रकार के आयोजनों के साथ कार्यक्रम बड़ी भव्यता से सम्पन्न हुआ। प्रसन्नता का विषय है कि वेद मन्दिर वैदिक धर्म के प्रचार का एक सशक्त केन्द्र बनता जा रहा है, कार्यक्रम का हजारों लोगों की उपस्थिति इस बात का प्रमाण दे रही है। इसके लिए वेद मन्दिर से जुड़े प्रत्येक कार्यकर्त्ता का पूर्ण समर्पण के साथ श्रम करना है। आशा है जिस तपस्या के साथ कार्यकर्त्ता जुड़ा हुआ है और निरन्तर प्रचार-प्रसार में लगा हुआ है उससे निश्चित रूप से आर्यसमाज का संगठन विस्तार को प्राप्त होगा और जो कल्पना गुरुवर विरजानन्द और महर्षि दयानन्द के मानस में संसार का कल्याण करने की थी वह अवश्य सफल होगी। सभी कार्यकर्त्ताओं ने भोजन आदि व्यवस्थाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। गुरुकुल के सभी ब्रह्मचारियों ने सभी व्यवस्थाओं को सुचारू रूप से संभाला। मीडिया प्रभारी विवेकप्रिय आर्य ने मीडिया के माध्यम से इस कार्यक्रम को जन-जन तक पहुंचाया। ट्रस्ट के समस्त पदाधिकारियों का संरक्षण सभी कार्यकर्त्ताओं और ब्रह्मचारियों को प्राप्त रहा। आशा है आप सबका इसी प्रकार सहयोग रहा तो साहित्य, शिक्षा, प्रचार आदि के माध्यम से आर्यसमाज के प्रचार का वेदमन्दिर एक सशक्त केन्द्र के रूप में उभरेगा। ❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00	गायत्री गौरव	5.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	शान्ता	20.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
शंकर सर्वस्व	120.00	संध्या रहस्य	20.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	गीता तत्व दर्शन	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	विषपान और अमृत दान	5.00
विदुर नीति	40.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	पंचाग के गुलाम	5.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियां (प्रेस में)	
चाणक्य नीति	40.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	नमस्ते ही क्यों	10.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	बाल मनुस्मृति	12.00	महिला गीतांजलि	15.00
नित्य कर्म विधि (प्रेस में)		ओंकार उपासना	12.00	पुराणों के कृष्ण	12.00
वेद प्रभा	30.00	आर्यों की दिनचर्या	12.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
शान्ति कथा	30.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	आदर्श पत्नी	10.00
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	मानव तू मानव बन	8.00
यज्ञमय जीवन	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00	ऋषि गाथा	4.00
दो बहिनों की बातें	30.00	क्या भूत होते हैं (प्रेस में)		सर्प विष उपचार	4.00
दो मित्रों की बातें (प्रेस में)		महाभारत के कृष्ण	15.00	चूहे की कहानी	4.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00	उपासना के लाभ	4.00
चार मित्रों की बातें	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00	भगवान के एजेन्ट	3.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00	दयानन्द की दया	3.00
मील का पत्थर	20.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00	शांति पथ	2.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2019 के लिये वार्षिक शुल्क 150/– रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/– भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक–पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

.....

.....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :–
व्यवस्थापक – कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर– गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600